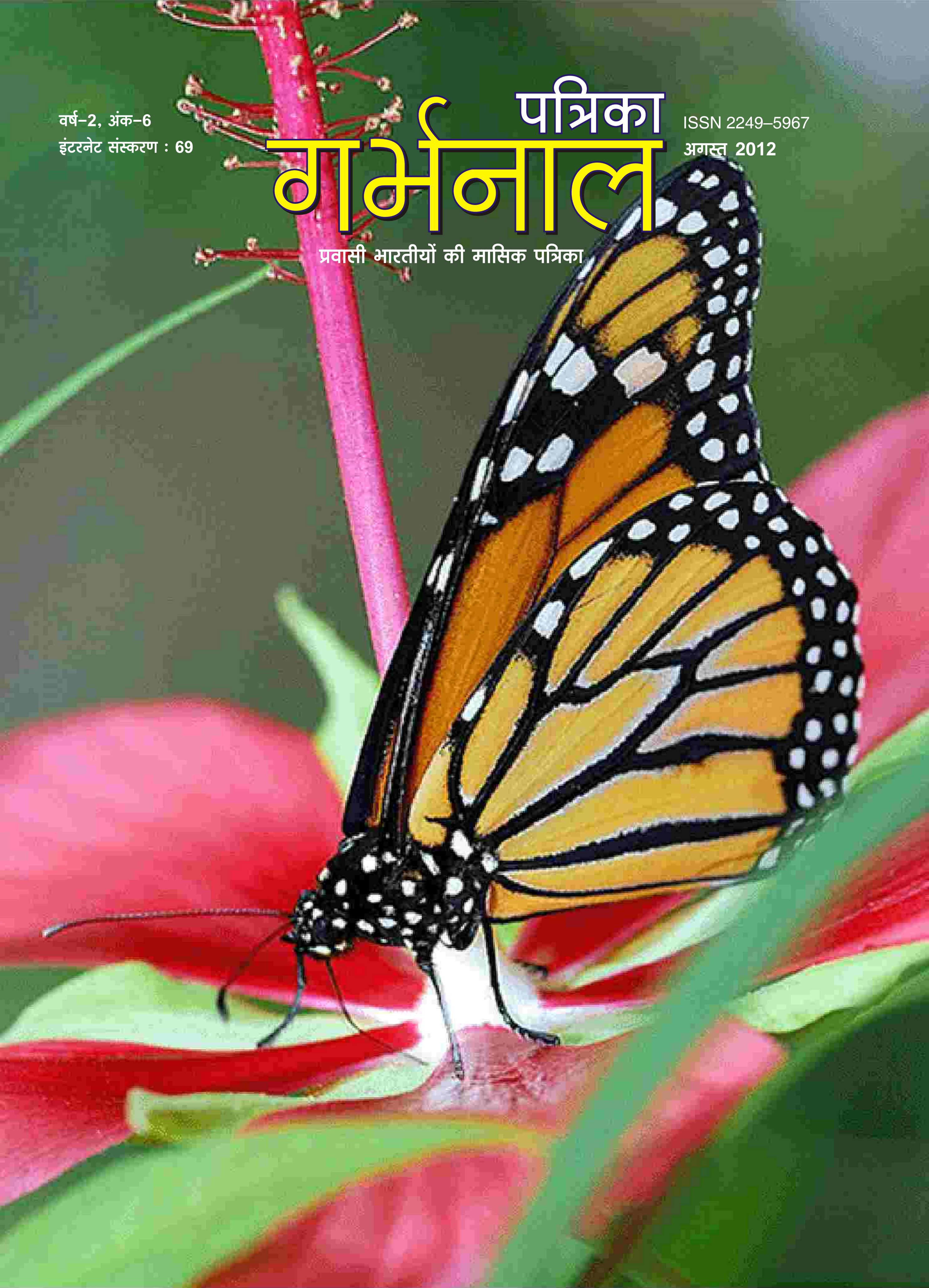

वर्ष–2, अंक–6
इंटरनेट संस्करण : 69

पत्रिका गर्भनाल

प्रवासी भारतीयों की मासिक पत्रिका

ISSN 2249–5967
अगस्त 2012

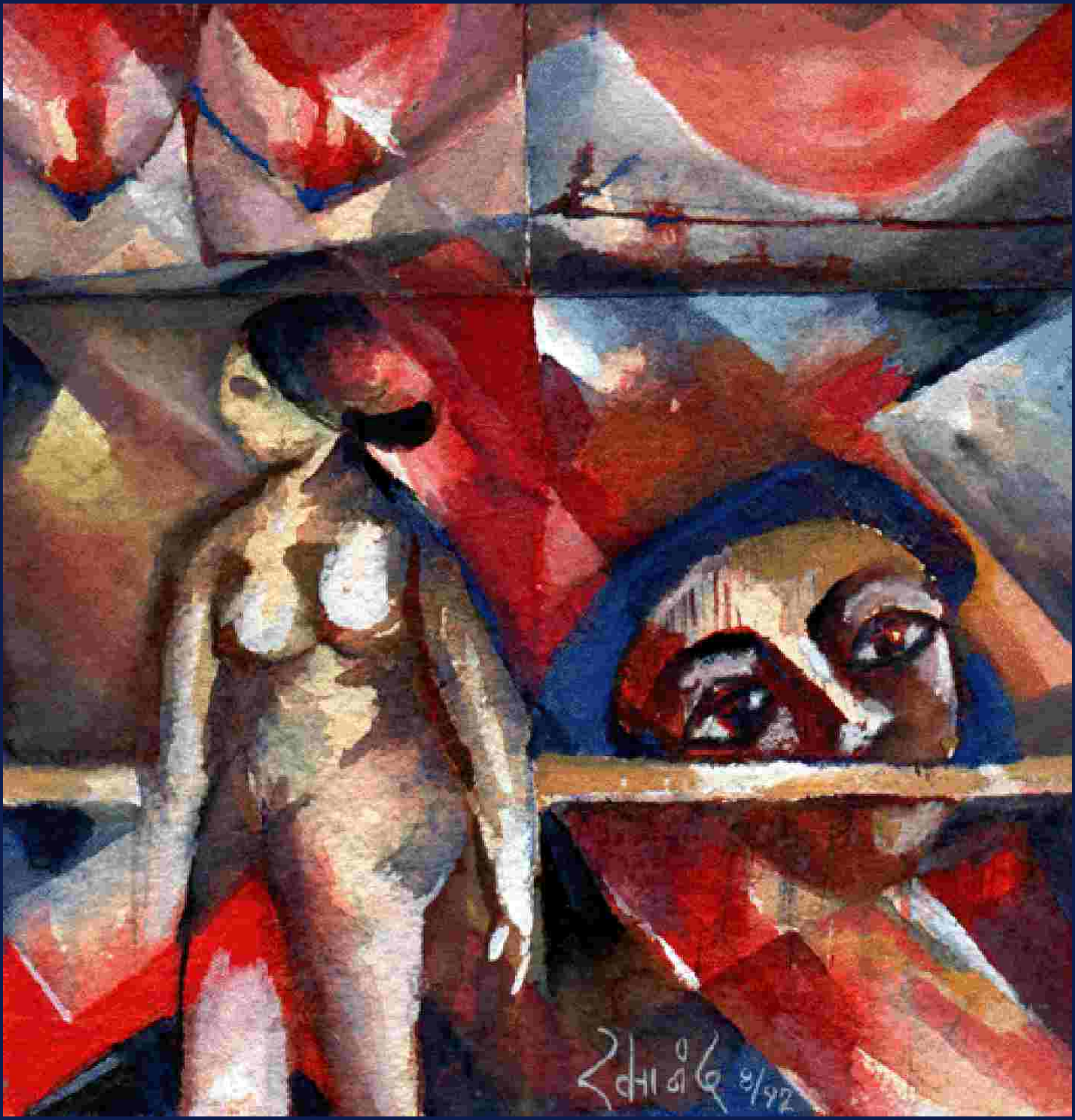

रामानंद शर्मा
ramanand210@gmail.com

अपनी बात

इस बार की अपनी बात का प्रसंग सालों पहले के तजुर्बे से जुड़ा हुआ है. सुना था कि मिथिलांचल में नैहरा नाम का एक गाँव है जहाँ के बासिन्दे काफी पढ़े-लिखे, उच्च पदों पर स्थापित, सम्पन्न, और आधुनिक हैं. लड़कियाँ सायकिल चलाती हैं. जबकि अगल-बगल के समाज में लड़कियों के लिए शिक्षा अभी भी उपलब्ध नहीं थी और उनकी मर्यादा घर की चाहरदिवारी के अन्दर सिमटे रहने में ही मानी जाती थी. इसे आसपास के गाँवों में छोटी कलकत्ता या मिथिला का पैरिस कहा जाता था. लेकिन ये कुलीन नहीं माने जाते थे. इनके साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना पारम्परिक समाज में अच्छा नहीं माना जाता था. यह विसंगति उलझन पैदा करती थी. ऐसा कैसे सम्भव है?

इत्तिफाक से उसी गाँव के कॉलेज में परीक्षक के रूप में जाने का अवसर मिला. नैहरा दरभंगा से आगे सकरी जंक्शन से सड़क द्वारा चार किलोमीटर पर अवस्थित है. पहला तजुर्बा तभी हुआ जब मैं सुबह की ट्रेन से सकरी जंक्शन पर उतरकर नैहरा जाने के लिए सवारी तलाशने लगा. अनेक लोगों ने जवाब देने के बजाय मुँह फिरा लिया. अन्त में एक व्यक्ति ने एक दूसरा नाम सुझाते हुए कहा कि आप यह नाम कहें, तभी सवारी मिलेगी. हुआ भी यही. ताँगावाला राजी हो गया. और मैंने गन्तव्य का रुख किया बाद में पता चला कि सुबह उस गाँव का नाम लेना अपसगुन समझा जाता है. कौतूहल और भी बढ़ गया.

कॉलेज पहुँचा. प्राचार्य से मैंने अपना कौतूहल व्यक्त किया. रेलवे स्टेशन पर इस गाँव के नाम पर लोग क्यों कतराए? नैहरा वासियों की समृद्धि एवं आधुनिकता की व्याख्या कैसे की जा सकती है और समाज की मुख्यधारा में कुलीनता का सम्मान इन्हें क्यों उपलब्ध नहीं है?

प्रिंसिपल साहब ने कॉलेज की इमारत के सामने का एक टीला दिखाते हुए कहा, उस टीले पर कभी राजा शिवसिंह का दरबार एवं राजभवन हुआ करते थे. कई सौ साल पहले की बात है, राजा शिवसिंह के दरबार में काशी के एक पंडित पधारे. उन्होंने अपना परिचय देते हुए राजा के पंडितों से शास्त्रार्थ की इच्छा व्यक्त की. उनकी चुनौती राजपंडितों ने स्वीकार कर ली. शास्त्रार्थ आयोजित हुआ और राजपंडितों की पराजय हुई. सभा में मायूसी फैल गई. उन दिनों मिथिला और काशी शास्त्र अध्ययन के दो प्रतिष्ठित पीठ हुआ करते थे. दोनों पीठों के पंडितों के बीच श्रेष्ठता की प्रतिस्पर्धा रहा करती थी. काशी के पंडित की जीत से मिथिला के सम्मान पर चोट पहुँच रही थी. तभी विजयी पंडित ने निवेदन किया कि मिथिला के पांडित्य की हार नहीं हुई है, मिथिला का सम्मान कहीं से भी क्षुण्ण नहीं हुआ है. राजसभा में आश्चर्य पसर गया, लोग उत्सुकता से पंडित की ओर देखने लगे. विजेता पंडित ने स्पष्टीकरण देते हुए कहा, मैं इसी गाँव का निवासी हूँ. आज से बीस साल पहले जब मैं बालक था, गाँव से चला गया था. इसलिए मेरी जीत मिथिला की ही जीत है. खोज करने पर पता चला कि यह सही बात थी कि बीस साल पहले एक बारह साल का बालक निरुद्देश्य हो गया था. राजा शिवसिंह ने विजेता पंडित को सम्मानित किया और उन्हें सहर्ष राजसभा में राजपंडित नियुक्त कर लिया.

लेकिन पराजित पंडितों का क्षोभ शान्त नहीं हुआ. उन्होंने अपने अपमान और हार का प्रतिकार करना तय किया. उन्होंने राजा से निवेदन किया, 'राजन, ये जैसा कह रहे हैं, अगर वह सत्य है तो हमारी पराजय नहीं हुई है. उनकी युक्ति थी कि उस निरुद्देश्य हुए बालक का शास्त्रों के विधान के अनुसार बारह साल बीतने पर मृत घोषित कर श्राद्ध सम्पन्न कर लिया गया था, इसलिए वे अब प्रेत हो गए हैं. हमारी पराजय प्रेत से हुई है, मनुष्य से नहीं. शास्त्रार्थ मनुष्यों के बीच होता है, प्रेत से नहीं. इसलिए शास्त्रार्थ के निर्णय पर पुनर्विचार किया जाना चाहिये.'

पर राजा ने उनकी युक्ति स्वीकार नहीं की और नवनियुक्त पंडित को यथेष्ठ पुरस्कार देकर राजपंडित बनाये रखा तथा उन्हें बसने के लिए यथेष्ट धन एवं जमीन प्रदान की. नवनियुक्त राजपंडित अभी अविवाहित थे. राजपंडित नियुक्त होने पर उनके विवाह का आयोजन राजा द्वारा किया गया. राजा ने पंडितों की युक्ति को स्वीकृति नहीं दी, पर समाज ने पंडितों के विधान को माना. उनके अनुसार नवनियुक्त पंडित मनुष्य थे ही नहीं, वे तो प्रेत थे. इसलिए उनको कन्यादान करना उचित नहीं होगा. राजा के प्रयास एवं आशीर्वाद से नवनियुक्त राजपंडित का घर बस तो गया. पर उनको सामाजिक स्वीकृति नहीं मिली. उनके वंशज ही इस गाँव के बासिन्दे हैं. राज कृपा एवं अपेक्षाकृत समृद्धि के कारण पंडितों के विधान के बावजूद इन्हें वैवाहिक सम्बन्ध तो मिलते रहे, पर सम्माननीयता एवं सहज स्वीकार्यता नहीं मिली. बल्कि ऐसा हुआ है कि वे खुद अपने घरों के चूल्हों का दरवाजा दक्षिण दिशा में रखते हैं. कर्मकाण्डीय मान्यता के अनुसार प्रेतों के चूल्हों का दरवाजा दक्षिण दिशा में होता है. उस समय अभी गैस के चूल्हे का चलन नहीं हुआ था. गैस के चूल्हे के प्रचलन के बाद इस फर्क की गुञ्जाइश नहीं रही. अन्धविश्वास के गर्भ में सकुन-अपसकुन पनपता है, इसकी झाँकी मुझे गाँव का पता पूछते वक्त मिल चुकी थी.

आधुनिक भारत के इतिहासकार डॉ. बी.बी मिश्र के मत में भारतीय जन का मिजाज गणतंत्र नहीं, रीति रिवाज पर आधारित सहमति (Custom based consensus) से निर्देशित होता है. गणतंत्र में कानून का शासन (Rule of Law) होता है, जो प्रशासन द्वारा बनाया और लागू कराया जाता है. रीति रिवाज पर आधारित सहमति का नियामक समाज होता है, न कि प्रशासन. समाज के लिए रीति-रिवाज ही सही गलत की अन्तिम कसौटी होती है. भारतीय समाज के रीति रिवाज धर्म से जोड़ दिए गए होते हैं, उनका पालन नहीं करना अपराध के साथ-साथ पाप भी होता है.

ganganand.jha@gmail.com

पत्रिका
गर्भनाल

वर्ष-2, अंक-6 (इंटरनेट संस्करण : 69)
अगस्त 2012

सम्पादकीय सलाहकार
गंगानन्द झा

परामर्श मंडल

वेद मित्र, एम.बी.ई., यू.के.
डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री, ऑस्ट्रेलिया
अनिल जनविजय, रूस
अजय भट्ट, बैंकाक
देवेश पंत, अमेरिका
उमेश ताम्बी, अमेरिका
आशा मोर, ट्रिनिडाड
भावना सक्सैना, सूरीनाम
डॉ. अनिल विद्यालंकार, भारत
डॉ. ओम विकास, भारत

सम्पादक
सुषमा शर्मा

तकनीकि सहयोग
डॉ. राजीव यादव, न्यूयार्क

आकल्पन सहयोग
डॉ. बृजेश तिवारी, लखनऊ

कम्पोजिंग
प्रताप परिहार

कानूनी सलाहकार
संजीव जायसवाल

सम्पर्क
डीएक्सई-23, मीनाल रेसीडेंसी,
जे.के. रोड, भोपाल-462023 (म.प्र.) भारत.
ईमेल : garbhanal@ymail.com

आवरण छायाचित्र
गूगल से साभार

प्रकाशित रचनाओं के विचार लेखकों के अपने हैं, जरूरी नहीं है कि सम्पादक इससे सहमत हों. विवाद की स्थिति में केवल भोपाल न्यायालय क्षेत्र ही रहेगा.

>> 6
हिन्दी सबकी है

>> 10
तंग-तंग तुम भी भुनभुनाओगे

>> 18
कृष्ण और सुदामा के नए रिश्ते

>> 22
बिथोविन और मोजार्ट की धुनों का गुँजन

इस अंक में

स्मृति-शेष :	प्राण शर्मा	4
	वेद मित्र, एम.बी.ई.	5
विचार :	बीनू भटनागर	6
	बृजेन्द्र श्रीवास्तव	8
संस्मरण :	दीपमाला यादव	10
बातचीत :	मधु अरोड़ा	14
नजरिया :	राजकिशोर	18
खोज-खबर :	बर्टिना बुथेल्लो	20
यात्रा-वृत्तांत :	संतोष श्रीवास्तव	22
व्याख्या :	मनोज कुमार श्रीवास्तव	25
वेद की कविता :	प्रभुदयाल मिश्र	30
प्रश्नोत्तरी :	डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता	31
गीता-सार :	अनिल विद्यालंकार	32
पंचतंत्र :		33
महाभारत :		34
अनुवाद :	प्रेमेन्द्र मित्र	36
कविता :	पल्लवी सक्सेना	37
	मुश्ताक अली खान बाबी	38
	स्वाति कपूर चड्ढा	39
	हरिबाबू बिंदल	40
	डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता	41
	श्याम कृष्ण भट्ट	42
ग़ज़ल :	कुसुम सिन्हा	43
शायरी की बात :	नीरज गोस्वामी	44
कहानी :	स्नेह ठाकुर	45
लघुकथा :	मीरा गोयल	21
किताब :	संगीता स्वरूप	49
खबर :		50
आपकी बात :		51

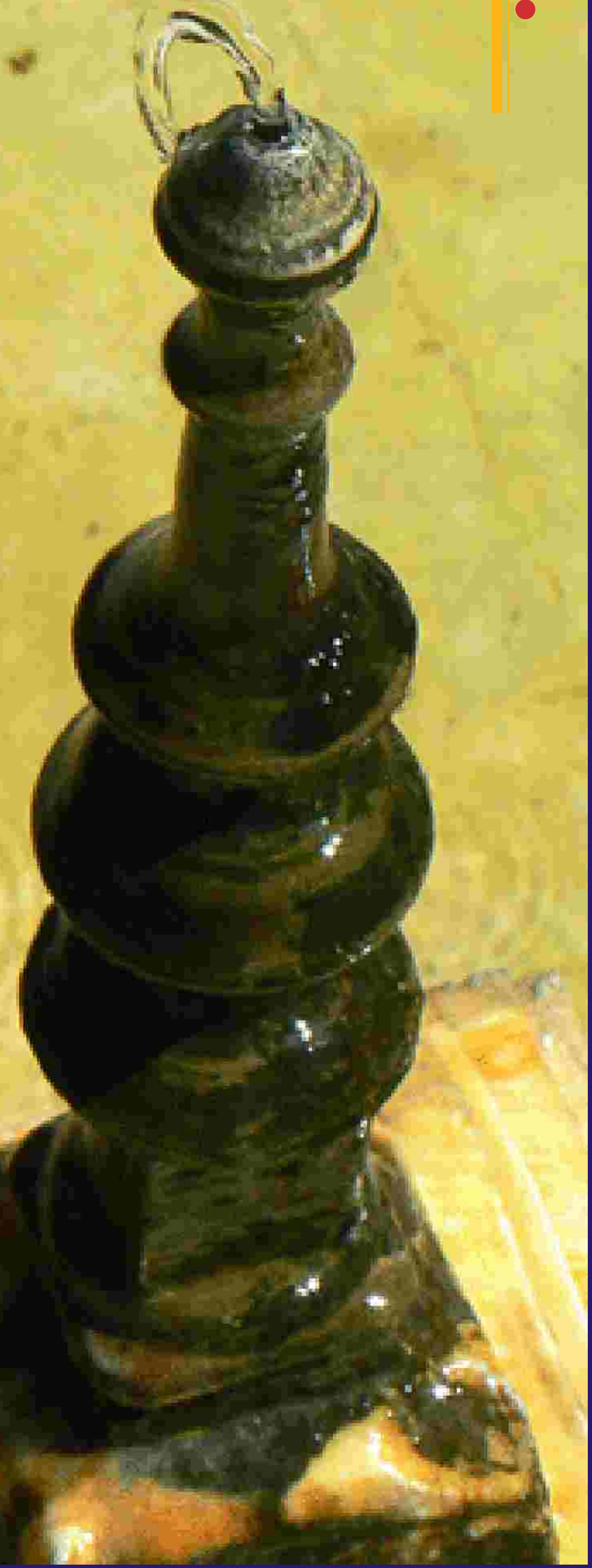

प्राण शर्मा

१३ जून, १९३७ को वजीराबाद (अब पाकिस्तान) में जन्म. पंजाब विश्वविद्यालय से एम.ए., बीएड. १९६५ से यू.के. में निवास और वहाँ के लोकप्रिय शायर और लेखक हैं. यू.के. से निकलने वाली हिन्दी की एकमात्र पत्रिका 'पुरवाई' में ग़ज़ल के विषय में महत्वपूर्ण लेख लिखे हैं और यू.के. में पनपे नए शायरों को कलम माजने की कला सिखाई है. आपकी रचनाएँ पंजाब के दैनिक पत्र, 'वीर अर्जुन', नयाज्ञानोदय, भाषा एवं 'हिन्दी मिलाप' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं. देश-विदेश के कवि सम्मेलनों, मुशायरों तथा आकाशवाणी कार्यक्रमों में हिस्सेदारी की है तथा अनेकों पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं. प्रकाशित रचनाएँ : 'ग़ज़ल कहता हूं' (ग़ज़ल संग्रह), 'सुराही' (कविता संग्रह).

संपर्क : 3, Crackston Close, Coventry, CV2 5EB, U.K. Email : sharmapran4@gmail.com

स्मृति-शेष

हमी सो गये दास्ताँ कहते-कहते

२९ जून, २०१२ की सुबह एक बजे की वह मनहूस घड़ी ही थी कि जब हम सबने तुम जैसा उत्कृष्ट साहित्यकार खो दिया था. मुझ जैसे साहित्यकार से साहित्य की एक विधा में लिखना मुहाल हो जाता है लेकिन मेरे यार डॉक्टर गौतम सचदेव, तुम्हारी प्रतिभा विलक्षण थी. तुम्हारी लेखनी से साहित्य की कोई विधा अछूती नहीं थी. कहानी, व्यंग्य, कविता, बाल गीत, ललित निबंध, शोध इत्यादि हर विधा में तुम्हारी लेखनी चली और बखूबी चली. सच कहता हूँ, यू.के. में हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में तुम्हारा कोई सानी नहीं था. ये दीगर बात है कि हम सच्ची कहानियाँ बयान करने वाले तुमको वह मान-सम्मान नहीं दे पाये जिसके तुम हक़दार थे.

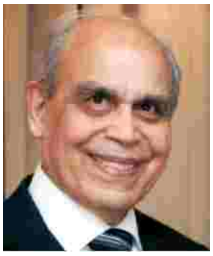

डॉ. गौतम सचदेव

हम साहित्यकार भी कितने खुदगर्ज़ हैं! अपना गुणगान तो करते हैं लेकिन किसी अन्य गुणी साहित्यकार का गुणगान करने से हिचकिचाते हैं. इस सच्चाई को डॉक्टर पद्मेश गुप्त ने भी माना है. उनके हृदय से निकले इन शब्दों पर गौर फरमाना - 'मैं मानता हूँ कि दिल्ली से लेकर कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय तक के छात्रों को हिन्दी पढ़ाने वाले गौतम सचदेव का स्थान हिन्दी साहित्य जगत के शीर्ष पर होता यदि वे भारत छोड़ कर इंगलैंड में न बस गये होते. भारत में हिन्दी साहित्य की मूल धारा से दूरी का हो जाना और स्वयं को स्थापित करने के लिए किसी भी दांव-पेंच में न पड़ने के कारण आज गौतम सचदेव का नाम हाशिये पर है.'

मेरे यार गौतम सचदेव, तुम उम्र में मुझसे दो-तीन साल छोटे थे लेकिन अक्ल या बुद्धि में कई साल बड़े थे. टेलिफ़ोन पर हमारे विचारों का आदान-प्रदान होता था और खूब होता था, लगातार एक घंटे तक. कभी मैं किसी कारणवश तुम्हें फोन नहीं कर पाता तो तुम्हारी पत्नी साहिबा यानि मेरी भाभी जी पंजाबी में उलाहना देती - 'शर्मा जी, तुस्सी कित्थे गवाच जांदे हो?'

मेरे यार गौतम सचदेव, तुम्हारी वाक्पटुता ने मुझे हमेशा ही चकित किया था. उर्दु के तीन लफ़्ज़ हैं - हर फन मौला. तुम वाकई हर फन मौला थे. मुझे याद है अप्रैल की बीस तारीख जब इंगलैंड के रहन-सहन पर हमारी बात हुई थी. उस बात का तुम पर इतना अधिक प्रभाव हुआ था कि तुमने कुछ ही दिनों में १३५ शेरों की ग़ज़ल कह कर ग़ज़ल के इतिहास में एक नया अध्याय रच डाला था. वाह, तुम्हारे फन के क्या कहने थे!

फ़ोन पर हमारी बातचीत अमूमन साहित्य पर होती थी. कभी कविता पर और कभी कहानी पर. बिहारी की सतसई और जयशंकर प्रसाद की कामायनी आदि तुम्हे पूरी की पूरी याद थी. फ़ोन पर ही जादू बिखेर देते थे जब तुम उनकी अनेक पंक्तियाँ अपने मधुर स्वर में सुनाते थे. मुझे वे घड़ियाँ नहीं भूलती हैं कि जब तुमने पहली बार कामायनी के 'चिंता' सर्ग की इन पंक्तियों को भाव विभोर होकर सुनाया था -

हिमगिरि के उत्तंग शिखर पर बैठ शिला की शीतल छाँह / एक पुरुष भीगे नयनों से देख रहा था प्रलय प्रवाह / नीचे जल था ऊपर हिम था एक तरल था एक सघन / एक तत्त्व की ही प्रधानता कहो उसे जड़ या चेतन / दूर-दूर तक विस्तृत था हिम स्तब्ध उसीके हृदय समान / नीरवता-सी शिला चरण से टकराता फिरता पवमान / तरुण तपस्वी-सा वह बैठा साधन करता सुर श्मशान / नीचे प्रलय सिन्धु लहरों का होता था सकरुण अवसान...

मेरे यार गौतम सचदेव, तुम्हारे मुखारविंद से निकला हुआ एक-एक शब्द का रस मेरे कानों में अब तक घुला हुआ है और घुला ही रहेगा लेकिन 'खूब गुज़रेगी जब मिल बैठेंगे दीवाने दो' वाला मिसरा अब कैसे हम दोनों अपने पर लागू करेंगे? तुम न जाने किस जहां में खो गये हो?

मेरे यार गौतम सचदेव, तुम्हारे जैसे प्रखर, बहुआयामी साहित्यकार का अचानक इस दुनिया से चले जाना माना कि हिन्दी साहित्य की अपूरणीय क्षति है लेकिन २५ जून को मुझसे कही अपनी यह मंशा तो तुम पूरी कर जाते - 'शर्मा जी, आठ-दस किताबों का मैटर मेरे दिमाग में है. दिल के ऑपरेशन के बाद स्वस्थ होते ही मैं लिखने के लिए जुट जाऊँगा.' लगता है कि किसी शायर ने यह शेर तुम्हारे लिए ही कहा था -

बड़े शौक़ से सुन रहा था ज़माना
हमी सो गए दास्ताँ कहते-कहते. ■

वेद मित्र, एम.बी.ई.

५ अगस्त, १९३८, लुधियाना (पंजाब) में जन्म. अधिकांश समय हिन्दी के प्रचार-प्रसार में संलग्न. १९८० से लंदन में हिन्दी पढ़ाते रहे हैं. इनके सैकड़ों विद्यार्थी ओ लेवल तथा ए लेवल हिन्दी परीक्षाओं में उच्च स्तर प्राप्त करते रहे हैं. प्रकाशित रचनाएं - समूची हिन्दी शिक्षा (४ भागों में) - १९९२. विदेशियों और भारतवंशियों को हिन्दी सिखाने का पूरा पाठ्यक्रम - पुस्तक के तीन संस्करण छप चुके हैं और ४० से भी अधिक देशों में हिन्दी शिक्षण के लिए प्रयोग की जा रही है. सम्मान - ब्रिटेन की महारानी ने २००७ में शिक्षा के क्षेत्र में दी गई सेवाओं के लिए विभूषित किया. २००८ में भारतीय उच्चायोग, लंदन ने जॉन गिलक्रिस्ट हिन्दी सम्मान प्रदान किया. सम्प्रति : किंग्स कॉलेज, लंदन में हिन्दी अध्यापन.

सम्पर्क : 356, Vale Road, Ash Vale, Surrey GU12 5LW email: vedmohla@yahoo.com

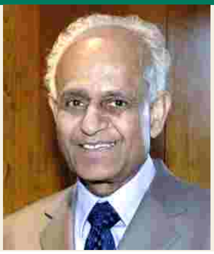

जानदार कलम वाला एक व्यक्तित्व

डॉ. गौतम सचदेव

यह विश्वास ही नहीं होता कि डॉ. गौतम सचदेव अब हमारे बीच नहीं रहे. अभी लगभग तीन माह पूर्व मेरी उनसे भेंट आर्य समाज, लंदन में हुई थी, जहां उन्होंने 'आर्यसमाज का भविष्य' जैसे अलोकप्रिय विषय पर बड़ा रोचक और ज्ञानपूर्ण भाषण दिया था. कितने तथ्य, कितने तर्क और कितनी जानकारी उस वार्ता में थी, जिसे एकत्र करने में उन्होंने बहुत शक्ति लगाई होगी. उसे सुनते हुए कौन कह सकता था कि शक्ति का वह भंडार अपनी अंतिम सांसों पर खड़ा हुआ था.

गौतमजी एक बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न व्यक्ति थे. साहित्य की लगभग सभी विधाओं पर उन्होंने लिखा. कविता, कहानी, व्यंग्य और समीक्षा के अतिरिक्त हिन्दी भाषा के विकास का इतिहास, सभी में उनका योगदान रहा. यहां तक कि बाल साहित्य भी उनकी कलम से अछूता न रहा. 'गीतों के खिलौने' उनकी बाल कविताओं का संग्रह था, जो भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत हुआ.

गर्भनाल के जुलाई-२०१२ अंक में उनकी मजेदार कहानी 'टमेटो कैचप' को पढ़कर कौन सोच सकता है कि उस कहानी के लेखक ने एक कविता संग्रह 'त्रिवेणी' - ईश, केन और कठ उपनिषद का काव्य रूपान्तर हमारे सामने मात्र तीन वर्ष पूर्व रखा होगा. प्रेमचन्द पर उनके शोधग्रंथ पर उन्हें पीएच.डी. मिली थी. उसी समय लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक 'समस्या' पर उनकी समीक्षा एक पूरी पुस्तक का रूप धारण करके हमारे सामने आई. अधिकांश लोग उन्हें बीबीसी के प्रसारक के रूप में देखते हैं, परन्तु उन पाठकों की भी कमी नहीं है, जो उनकी रचनाओं के प्रशंसक हैं. गौतमजी किसी गुटबन्दी में कभी शामिल नहीं हुए और न ही व्यर्थ की चापलूसी करना उन्हें पसन्द था. आज की हिन्दी दुनिया में इन हथकंडों को न आजमाने वाला व्यक्ति हाशिए पर खड़ा कर दिया जाता है, परन्तु अपनी जानदार कलम के बल पर उन्होंने हिन्दी साहित्य में अपना स्थान बना ही लिया था.

> "गौतमजी एक बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न व्यक्ति थे. साहित्य की लगभग सभी विधाओं पर उन्होंने लिखा. कविता, कहानी, व्यंग्य और समीक्षा के अतिरिक्त हिन्दी भाषा के विकास का इतिहास, सभी में उनका योगदान रहा."

गौतमजी बड़े सहृदय मित्र थे और हर अवसर पर सहायता करने को उद्यत रहते थे. जब मैं विदेश में हिन्दी के प्रचार में बीबीसी के योगदान पर लिख रहा था, तब उन्होंने बड़ी मूल्यवान सामग्री देकर मेरी सहायता की. यह मेरा सौभाग्य है कि वे मेरे भतीजे के अध्यापक थे और दिल्ली में रहते हुए पंजाब विश्वविद्यालय के उसी कैम्प कॉलेज में पढ़ाया था, जहां मेरे चाचाजी पढ़ाते थे. इस विचित्र रिश्ते के आधार पर उन्होंने मित्रता का हाथ हमेशा मेरी ओर बढ़ाए रखा. ऐसे मित्र के निधन के समाचार पर मेरी आंखें आंसुओं से भर गई हैं, और मैं उन्हें रोक नहीं पा रहा हूं.■

बीनू भटनागर
४ सितम्बर १९४७ को बुलन्दशहर में जन्म. लखनऊ विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान में एम.ए. की उपाधि. हिन्दी साहित्य में हमेशा से रुचि रही, लेकिन रचनात्मक लेखन देर से आरंभ किया. नामी पत्र-पत्रिकाओं में कवितायें, आलेख आदि प्रकाशित.
सम्पर्क : ए-१०४, अभियन्त अपार्टमेन्ट, वसुन्धरा एनक्लेव, दिल्ली-११००९६ ईमेल : binu.bhatnagar@gmail.com

विचार

हिन्दी सबकी है

मेरे पिछले लेख का शीर्षक था 'हिन्दी किसकी है', इसका उत्तर खोजने पर यही लगा कि हिन्दी हम सभी भारत वासियों की है. हिन्दी भाषा के प्रचार और प्रसार के लिये हिन्दी भाषी राज्यों को पहला कदम उठाना होगा. सबसे ज़्यादा ज़रूरी है कि हमारे बच्चे हिन्दी का सम्मान करें, इसके लिये अंग्रेज़ी का परित्याग करने की भी आवश्यकता नहीं है, आवश्यक है तो यह कि शिक्षा और पाठ्यक्रम मे मूलभूत परिवर्तन किये जायें. हिन्दी भाषी राज्यों में और अहिन्दी भाषी राज्यों में पाठ्यक्रम निर्धारित करने के लिये मापदण्ड एक नहीं हो सकते, इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों और शहरी क्षेत्रों की आवश्यकताएँ भी अलग-अलग हैं.

उत्तर भारत के छोटे बड़े शहरों में अंग्रेज़ी माध्यम से शिक्षा देने वाले तथाकथित पब्लिक स्कूलों, इंटरनेशनल कहलाने वाले या कॉनवेन्ट स्कूलों की भरमार है, वही ग्रामीण क्षेत्रों में स्कूलों का ही अभाव है. वहाँ शिक्षकों और बुनियादी सुविधाओं की बेहद कमी है. शहरों में भी जो लोग मँहगे स्कूलों में अपने बच्चों को नहीं पढ़ा सकते उनके लिये सरकारी स्कूल हैं पर वहाँ भी शिक्षा का स्तर सतोषजनक नहीं है.

हिन्दी भाषी राज्यों मे हिन्दी माध्यम के स्कूल हों चाहे अंग्रेजी माध्यम के, अक्षर ज्ञान हिन्दी से ही शुरू करना चाहिये. तीसरी कक्षा तक केवल अंक गणित और हिन्दी पढ़ानी चाहिये. हिन्दी विषय के अंतर्गत ही थोड़ी बहुत सामाजिक ज्ञान और विज्ञान की जानकारी कुछ पाठों मे दी जा सकती है. चौथी कक्षा से अंग्रेजी भी पढ़ानी चाहिये क्योंकि एकदम अंग्रेजी को हटा देने से छात्रों को आगे जाकर कठिनाई हो सकती है. अंग्रेज़ी पढ़ाई जाये परन्तु मातृभाषा का मूल्य देकर नहीं. पाँचवी कक्षा तक हिन्दी अंग्रेज़ी और अंक गणित के अतिरिक्त कोई और विषय इस स्तर पर पढ़ाना ज़रूरी नहीं है. बच्चों का भाषा ज्ञान अच्छा होगा तो आगे चलकर सभी विषय समझना सरल होगा. भाषा सही हो, छात्र अपनी जानकारी को सही तरह अभिव्यक्त कर सकें, आरंभिक शिक्षा का यही उद्देश्य होना चाहिये.

माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम से शिक्षा देने वाले स्कूल हिन्दी में शिक्षा देंगे ही, पर कम से कम आठवीं कक्षा तक अंग्रेजी भी एक विषय के रूप में पढ़ाना फ़िलहाल अनिवार्य होना चाहिये जिससे ये छात्र चाहे जो भी व्यवसाय अपनायें थोड़ी बहुत अंग्रेज़ी लिख पढ़ सकें. जिन छात्रों को कोई छोटा-मोटा व्यवसाय करना है, कोई दुकान ग्रामीण क्षेत्र मे खोलनी है या चतुर्थ श्रेणी की नौकरी ढूँढनी है वे अपनी क्षमता देखकर निर्णय ले सकते हैं कि वे आगे अंग्रेजी पढ़े या नहीं. अंग्रेज़ी के विकल्प के रूप में उन्हें या तो कोई क्षेत्रीय भाषा पढ़ाई जा सकती है या कोई व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जा सकता है. हिन्दी भाषा (साहित्य नहीं) हिन्दी और अंग्रेज़ी माध्यम दोनों ही प्रकार के विद्यालयों में बारहवीं कक्षा तक अनिवार्य होनी चाहिये. कक्षा ११ और १२ में हिन्दी साहित्य एक वैकल्पिक विषय होना चाहिये.

हिन्दी माध्यम से पढ़ने वाले छात्रों को भले ही अंग्रेज़ी अनिवार्य रूप से आठवीं कक्षा के बाद न पढ़ाई जाय पर वैकल्पिक विषय के रूप में अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य पढ़ने का प्रावधान होना चाहिये जिससे हिन्दी माध्यम से पढ़ने वाले छात्र अपनी क्षमता के अनुसार उच्च शिक्षा से केवल इसलिये न वंचित रह जायें कि उनकी शिक्षा हिन्दी माध्यम से हुई थी. फ़िलहाल वक्त का तकाजा यही है कि हमें हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेज़ी की भी ज़रूरत है, इससे हमें कोई नुकसान भी नहीं है बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लाभ ही है. पर जब विदेशी भाषा अपनी भाषा को निगलने लगे, उसका रूप विकृत करने लगे

तो भाषा की नीति पर विचार करना ज़रूरी है, अब वह समय आ गया है.

आजकल जिस प्रकार से शिक्षा दी जा रही है उसमें भाषा का महत्व ही समाप्त हो गया है. अंग्रेज़ी माध्यम में पढ़ने वाले छात्रों का हिन्दी ज्ञान ही नहीं अंग्रेज़ी का ज्ञान भी अच्छा नहीं है, कारण यही है कि उन्हें हर विषय में छोटे-छोटे रटे रटाये उत्तर देने होते हैं. लीक से हटकर सोचने और लिखने की क्षमता का न विकास होता है न आज़ादी. सैम्पल पेपर के अनुसार सीमित परिधि में उत्तर की अपेक्षा की जाती है. कुँजियों से वैसा का वैसा रटकर ९०-९५ प्रतिशत अंक यदि भाषा मे मिल जायें तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि उस छात्र को अपनी भाषा पर अधिकार है, वह अपने विचारों को सही तरह से अभिव्यक्त कर सकता है.

> हिन्दी के विद्वानों ने खड़ी बोली को हिन्दी के मानक रूप में मान्यता दी है, इसलिये हर क्षेत्र के लोगों को पढ़ने के माध्यम या एक भाषा के रूप मे खड़ी बोली को ही अपनाना आवश्यक है.

हिन्दी माध्यम से शिक्षा देने वाले स्कूलों में अधिकतर सरकारी या नगर निगम के स्कूल हैं, यहाँ शिक्षा के स्तर में सुधार की बहुत आवश्यकता है. भाषा में सबसे पहले सभ्यता लाना ज़रूरी है. भौंडे और अश्लील शब्द (गालियाँ) यदि छात्र प्रयोग मे लायें तो शिक्षक हर मुमकिन कोशिश करके छात्रों को सभ्य भाषा बोलने और लिखने के लिये प्रेरित करें.

हिन्दी भाषी राज्यों में बारहवीं कक्षा उत्तीर्ण करने के बाद छात्रों को सही, सरल व व्याकरण सम्मत हिन्दी में किसी भी विषय में अपने विचार लिखने में या दूसरों के विचार पढ़ने में कठिनाई नहीं होनी चाहिये, भले ही उन्होंने श्रेष्ठ कवियों या लेखकों की रचनायें न पढ़ी हों, पर मातृभाषा का व्यावाहरिक ज्ञान होना आवश्यक है.

अलग-अलग क्षेत्रों की अलग-अलग आवश्यकतायें और सीमायें हैं. हिन्दी के प्रचार और प्रसार के लिये पूरे देश में एक से स्तर नहीं बनाये जा सकते. वैसे भी शिक्षा की नीतियाँ बनाना राज्य सरकारों के क्षेत्र मे आता है. हिन्दी के साथ-साथ सभी प्रदेशों की भाषायें अपने-अपने क्षेत्रों मे बोली जायें व पढ़ाई जायें. स्थानीय भाषा मातृभाषा की तरह और हिन्दी संपर्क भाषा की तरह पढ़ाने पर ज़ोर होना चाहिये. अधिकतर राज्यों में काम चलाऊ हिन्दी काफ़ी लोग जानते हैं जिसका अधिकतर श्रेय हिन्दी फ़िल्मों को जाता है. हिन्दी के प्रति कहीं भी विरोध के स्वर नहीं उठें यह ज़िम्मेदारी राज्य सरकार की है, किसी को भी नहीं लगना चाहिये कि हिन्दी उन पर थोपी जा रही है, यदि किसी राज्य में ऐसी संभावना नज़र आये तो हिन्दी को वैकल्पिक विषय ही रहने देना चाहये. धीरे-धीरे हिन्दी का सम्मान और उपयोगिता नज़र आने पर सबका झुकाव उसकी ओर बढ़ेगा.

सब अहिन्दी भाषी राज्यों मे लोग स्वेच्छा से हिन्दी सीखें और उन्हें हिन्दी सीखने के लिये अपनी मातृभाषा से भी कोई समझौता न करना पड़े. हिन्दी भाषी क्षेत्रों के लोग सही साफ़-सुथरी हिन्दी बोलें, पढ़ें, लिखें और समझें ये बहुत ज़रूरी है. हिन्दी की भी कई विभाषायें और बोलियाँ हैं जिनमें बहुत मिठास है. बोलचाल की भाषा या साहित्य के लिये भी ये बहुत उपयोगी हैं. हिन्दी के विद्वानों ने खड़ी बोली को हिन्दी के मानक रूप में मान्यता दी है, इसलिये हर क्षेत्र के लोगों को पढ़ने के माध्यम या एक भाषा के रूप मे खड़ी बोली को ही अपनाना आवश्यक है.

हिन्दी भाषी राज्यों के लोग सही व्याकरण सम्मत भाषा बोलें और लिखें, पर अहिन्दी भाषी राज्यों के लोगों से ये अपेक्षा नहीं की जा सकती. उनकी भाषा पर उनकी मातृभाषा का प्रभाव होना स्वाभाविक है, वे हिन्दी सीखने का प्रयत्न करें, उसका सम्मान करें और उसे संपर्क भाषा के रूप मे स्वीकार करें यही बहुत है.

हिन्दी और क्षेत्रीय भाषा के साथ साथ सब स्कूलों में अंग्रेज़ी भी वैकल्पिक विषय में पढ़ाई जाती रहे. बारहवी कक्षा उत्तीर्ण करने तक सबको हिन्दी क्षेत्रीय भाषा और अंग्रेज़ी में से सुविधा, योग्यता, क्षमता और आवश्यकता के अनुसार तीन में दो भाषाओं का इतना व्यवाहरिक ज्ञान हो कि उन्हें इन भाषाओं को बोलने पढ़ने लिखने में कोई कठिनाई न हो.

यदि ऐसा होता है तो उच्च शिक्षा का माध्यम हिन्दी को बनाने में दिक्कत नहीं होगी. कुछ विश्वविद्यालय कुछ विषयों में हिन्दी माध्यम से शिक्षा दे भी रहे हैं. अंग्रेजी का कम ज्ञान होना भी किसी की उन्नति मे बाधक न बने इसलिये प्रतियोगी परीक्षाओं के लिये भी भारतीय भाषाओं में लिखित परीक्षाओं और साक्षात्कार देने का विकल्प होना चाहिये.

धीरे-धीरे यदि हम हिन्दी की स्थिति को सुधार सके तो विज्ञान और तकनीकी शिक्षा भी हिन्दी माध्यम से देने में समर्थ हो सकेगें. बस अपना दृष्टिकोण बदलना पड़ेगा, अपनी भाषा से प्रेम करना होगा, उसे सम्मान देना होगा, तब 'हिन्दी दिवस' या 'हिन्दी सप्ताह' मनाने की आवश्यकता ही नहीं होगी. हर दिन हिन्दी दिवस होगा.■

बृजेन्द्र श्रीवास्तव

लेखक-समीक्षक, साहित्य एवं कला, विज्ञान एवं अध्यात्म, ज्योतिष एवं वास्तु, ब्रह्मविद्या एवं ब्रह्माण्ड विज्ञान जैसे विविध विषयों पर निरंतर लेखन. ५० से अधिक शोध-पत्र विश्वविद्यालयों व राष्ट्रीय संगोष्ठियों में प्रस्तुत. जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर में ज्योतिर्विज्ञान अध्ययनशाला के अतिथि अध्यापक.

सम्पर्क : अपरा ज्योतिषम, २६९, जीवाजी नगर, ठाठीपुर, ग्वालियर-४७४०११

ईमेल - brijshrivastava@rediffmail.com मोबाइल - ९४२५३६०२४३

विचार

तपस्या उत्सव उत्सुकता है प्रतीक्षा

प्रतीक्षा हमारे दैनिक जीवन का हिस्सा है. छोटी-छोटी प्रतीक्षाओं से हमारा दिन शुरू होता है जिसे हम कभी प्रत्यक्ष स्वीकारते हैं, कभी नहीं भी स्वीकारते. बच्चे यदि सुबह-सुबह स्कूल की बस की प्रतीक्षा करते हैं तो घर लौटने के लिए छुट्टी की घण्टी की प्रतीक्षा भी उनके मन में कहीं छिपी होती है. पक्षी पूरब में सूरज उगने के पहले की लालिमा की प्रतीक्षा करते हैं तो विश्वात्मा सूरज को जल से अर्घ्य देने वाले सूर्योदय की. अवसरवादी, उगते सूरज की सम्भावना वाले नेता की सदैव से प्रतीक्षा करते रहे हैं. वरिष्ठजन को चाय और अखबार की तो गृहिणी को कामवाली मेंड सरवेंट की प्रतीक्षा रहती है.

दरअसल प्रतीक्षा, थोड़ा गौर फरमाएं, बहुआयामी है बहुरूपिया भी है, इसका रूप कभी छोटा होता है तो कभी बड़ा. मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन ही इस प्रकार, एक प्रतीक्षा से दूसरी प्रतीक्षा तक एक प्रतीक्षा मात्र ही है. बच्चा जब माँ के गर्भ में होता है तब उसके आगमन की प्रतीक्षा की जाती है. जीवनदायिनी इस प्रतीक्षा का आरंभ बेचैनी और उत्सुकता से होता है जिसे हम उत्सव का रूप भी दे देते हैं- माता के गर्भ में शिशु के आने पर गोद भराई, पुंसवन सीमन्तोन्नयन के रस्म-संस्कार होते हैं. इस तरह की प्रतीक्षा में प्रार्थना भी जुड़ी रहती है. महर्षि वेद व्यास को तो अपने बेटे शुकदेव के माता के गर्भ से बाहर आने के लिए बारह बरस तक प्रतीक्षा करना पड़ी क्योंकि महाज्ञानी शुकदेव को डर था कि बाहर आते ही माया के स्पर्श से वे अपना आत्म स्वरूप भूल जाएंगे.

आसुरी शक्तियों के संहार के लिए ऋषियों को राम के आगमन की प्रतीक्षा करनी पड़ी पर इस प्रतीक्षा ने ही उन्हें असुरों के त्रास सहने की शक्ति भी दी थी. ईसा मसीह के अवतरण के क्रिसमस त्यौहार के पहले 'एडवेंट' मनाया जाता है, एडवेंट का अर्थ होता है 'आगमन' या 'आविर्भाव' यहां भी अवतरण पूर्व की प्रतीक्षा को उत्सव रूप दे दिया गया है.

छोटी-छोटी प्रतीक्षाओं के साथ कई बड़ी-बड़ी प्रतीक्षाएं भी जुड़ी होती हैं. बच्चा होने की प्रतीक्षा, वात्सल्य का आनन्द लेने की प्रतीक्षा, संतान की पढ़ाई-शादी की जिम्मेदारी से मुक्त होने की प्रतीक्षा में ही कितना जीवन निकल जाता है, पता ही नहीं लगता. इसलिए कई बार ऐसा लगता है कि एक प्रतीक्षा से दूसरी प्रतीक्षा के बीच के समय अन्तराल का नाम ही जीवन है. जब जीवन को किसी भी चीज की वाकई कोई प्रतीक्षा नहीं रह जाती तो वह पूर्णकाम हो जाता है और यदि अ-प्रतीक्षा का यह भाव निराशा से उपजा है तो जीवन फिर जीवन नहीं मात्र अस्तित्व ही बनकर रह जाता है.

कवि जब कविता रचना के लिए सुविचारित ढंग से किसी भाव के उठने की प्रतीक्षा करता है तो उसकी यह प्रतीक्षा मछली पकड़ने वाली प्रतीक्षा जैसी अवसर वादी होने से कोई काव्य आस्वाद नहीं देती. पर ज्यों ही उसकी यह समय यात्रा एकाग्रता में बदलती है सृजन का प्रस्थान बिन्दु मिल जाता है.

हमारी हर तरह की प्रतीक्षा किसी न किसी आशा का ही दूसरा रूप है जिसमें सुखद घटना की चाहत होती है. यह चाहत जितनी तीव्र होती है उतनी ही उत्सुकता भी इस प्रतीक्षा में घुलती जाती है. अपनी पसंद का हीरो जब फिल्म में विलेन से पिटता दिखाई देता है तो हम इस बात की प्रतीक्षा में ही वे सारे सीन देखते हैं कि कब हीरो का दांव लगेगा और कब वह जीतने के लिए उठ खड़ा होगा. ऐसा केवल फिल्मी स्क्रीन पर नहीं होता हमारे अपने जीवन में रोज ही होता है- हम जब टिकिट की लाइन में लगे होते हैं तब हम प्रतीक्षा करते हैं किसी युवा की जो लाइन बिगाड़ने वालों को ठीक कर दे, हम जब संकट में या मानसिक उलझन में होते है तब हमें प्रतीक्षा रहती है कि कोई मार्ग बताए या हमारे संकल्प को

> हमने अपनी वैज्ञानिक बुद्धि से प्रतीक्षाओं का समय भी घटाया है. चिट्ठी पत्री की प्रतीक्षा को सेलफोन पर छोटे संदेश ने कम कर दिया है और यात्रा में मुकाम पर पहुंचने की बेचैन प्रतीक्षा को भी.

सहारा दे. दूसरी ओर यदि हम किसी घटना की प्रतीक्षा आशा के साथ नहीं करें बल्कि अच्छे-बुरे दोनों तरह के परिणाम की अपेक्षा के साथ करें, चाहे वह प्रतीक्षा किसी प्रतियोगी परीक्षा के रिजल्ट की हो या नई बहू का अपने प्रति व्यवहार की या सास का अपने प्रति बहू के व्यवहार की या खेती में फसल की या मार्केटिंग से खरीद-बिक्री की वृद्धि की प्रतीक्षा दोनों तरह के परिणामों के साथ करें तो हम निराशा के संत्रास से काफी हद तक बच सकते हैं और इसके लिए अपने को पहले से ही तैयार भी पाते हैं.

इसका मतलब यह हुआ कि प्रतीक्षा को हम अपनी कल्पनाओं के रंग से रंगें तो पर बहुत अधिक नहीं, ताकि असलियत घटित होने पर यदि ठीक वैसे रंग नहीं मिले तो निराशा न हो. हाँ इस प्रतीक्षा को हम मेहनत आत्मविश्वास से रंगेंगे तो अधिकतर ऐसा नहीं होगा. प्रतीक्षा यों तो जीवन का अंग है और हमने उत्सव-धर्मिता, उत्सुकता और प्रार्थना भी जोड़ी है इसमें. हमने अपनी वैज्ञानिक बुद्धि से प्रतीक्षाओं का समय भी घटाया है. चिट्ठी पत्री की प्रतीक्षा को सेलफोन पर छोटे संदेश ने कम कर दिया है और यात्रा में मुकाम पर पहुंचने की बेचैन प्रतीक्षा को भी.

पर विज्ञान का इस मामले में मनोवैज्ञानिक दुरुपयोग भी हो रहा है. हर बात में तत्काल या इन्स्टेंट काम बनाने का झूठा दावा करने वाली विज्ञापन की कला बाजियाँ इसका छोटा-सा उदाहरण हैं. साँवरी सलोनी को गोरी सलोनी बनाने के लिए इनके विज्ञापन प्रतीक्षा की अवधि निरन्तर घटा रहे हैं - पहले कुछ हफ्तों में त्वचा गोरी होती थी अब रात में फलां क्रीम लगाओ और सुबह गोरी दिखो. फलों के पकने और सब्जियों के उगने में जो समय प्रकृति लेना चाहती है उसकी प्रतीक्षा भी अब हम करना नहीं चाहते. कोई आश्चर्य नहीं कि बच्चा पैदा होने में लगने वाले नौ माह की लंबी प्रतीक्षा में भी कटौती का कोई रास्ता टैस्ट ट्यूब बेबी की पद्धति में निकल आए! प्रतीक्षा के मनोविज्ञान पर एड-गुरुओं का आक्रमण यहीं नहीं रुका है. मेहनत से बचत करके पैसा इकट्ठा करने और फिर इस पैसे से घर, कार, रसोई के उपकरण लेने में नई नौकरी वाले को पहले प्रतीक्षा करना पड़ती थी, वह मेहनत करता था और 'जितनी लंबी चादर उतनी दूरी तक पैर पसारने' की कहावत के मुताबिक ही सुख साधन खरीदता था और तनाव रहित सन्तोष पाता था.

पर भला हो इस अमेरिकी कल्चर का जिसकी कड़ी मेहनत करने की अच्छाई तो हमने सीखी नहीं पर मौज-मस्ती में अतिरेक की बुराई जरूर ले ली है. कमाई चाहे सौ रुपए की हो पर हजार रुपए का मौजमस्ती का सामान ले जाओ किश्तों में, मार्केटिंग गुरू सपनों के सौदागर बन गए हैं, कमाओ, बचत करो और फिर खरीदो - आनन्द के लिए इतनी लंबी प्रतीक्षा मत करो. 'अभी आओ अभी पाओ, मत प्रतीक्षा में समय गंवाओ, किश्तों में जिन्दगी हमें उधार दे जाओ,' कुछ ऐसा ही मन्त्र है इन कम्पनियों का. एक एयरलाइन्स से अचानक ही निकाले गए कर्मचारियों ने टीवी साक्षात्कार में कहा, अब हमारे कार लोन और मकान कर्जे की किश्तों का क्या होगा. मुझे तो नौकरी के अभी चार महीने ही हुए थे. एक ने कहा मुझे मँहगे स्कूल से बच्चों को निकालना पड़ेगा. इन सभी ने अपनी हैसियत बढ़ने तक प्रतीक्षा नहीं की झूठी प्रतिष्ठा और अहं सन्तुष्टि के तंग रास्ते को चुना और तनाव व प्रवंचना के शिकार बने.

सामाजिक स्तर पर मनुष्य प्रजाति की सामूहिक मनःस्थिति सदैव से ही यह रहती आई है कि उसे वर्तमान के संत्रास से उबारने के लिए किसी मसीहा की, हीरो की प्रतीक्षा रहती है. समाज सुधारक क्रान्तिकारी राजनेता, धर्म संस्थापक, अवतार इसके उदाहरण हैं. जबकि वैज्ञानिक आविष्कारक और साहित्यकार इस तरह की उद्धारक मनोवृत्ति के परिणाम नहीं होते बल्कि जिज्ञासा और परिष्कार की देन होते हैं.

जब प्रतीक्षा पूरी नहीं होती तो क्या होता है? गोपियों की, यशोदा की, कृष्ण-सान्निव्य प्रतीक्षा क्या कभी पूरी हो सकी थी? अहिल्या की राम-प्रतीक्षा तो पूरी हुई थी पर राधा की? राधा की कृष्ण प्रतीक्षा तो अब एक नया मनोभाव है- 'राधाभाव' जिसमें विरह ही आनन्द है या फिर राधा ही स्वयं कृष्ण भी है और राधा भी जिसमें प्रतीक्षा रहितता का अनन्य भाव है. सूफियों को भी ऐसा कसकने वाला इंतजार रास आता है.

अध्यात्म में आत्मा के आवागमन के चक्र से मुक्ति पाने के लिए ८४ लाख तरह के जन्मों तक प्रतीक्षा की बात पुराण करते हैं जबकि योग में क्रिया योग इस प्रतीक्षा को मात्र दो तीन जन्मों में पूरी करने की बात करता है, तो वेदांत तत्काल मुक्ति का आश्वासन देता है. जो भी हो, भीष्म ने इच्छा मृत्यु का वरदान होने पर भी उत्तरायन की प्रतीक्षा क्यों की? इसलिए कि बाहरी तौर पर सूर्य का जो उत्तरायन है, ऊपर उठना है, वही अध्यात्म में आत्मारूपी सूर्य का उर्ध्व आरोहण है, देवयान है स्वयं से साक्षात्कार है जिसके लिए उन्हें थोड़ी और तपस्या करना थी.

सीधी-सी बात है, जब भी हमें प्रतीक्षा करना पड़े हम प्रतीक्षा करें और इस प्रतीक्षा को तपस्या में, उत्सव में, उत्सुकता में, सृजनात्मकता में बदल दें.■

दीपमाला यादव
बनारस में जन्म. बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से कैमिस्ट्री में बी.एस.सी. एवं एम.एस.सी. अमेरिका में स्थायी निवास.
सम्पर्क : deepmalayadav2003@yahoo.com

संस्मरण

तंग-तंग तुम भी भुनभुनाओगे

धीरे-धीरे गर्मी बहुत बढ़ने लगी थी. तापमान भी आए दिन जीव-जन्तुओं की सहन-शक्ति की सीमा को पार करने के लिए हर वक्त आतुर प्रतीत होता था. अब प्रकृति भी दिन प्रतिदिन न जाने किस बात से अपनी नाराजगी को जी दहलाने वाली परिस्थितियों द्वारा व्यक्त कर देती थी.

विगत कुछ वर्षों से भूमण्डलीय तापक्रम वृद्धि (global warming) को लेकर वैसे तो काफी हो-हल्ला मचाया जा रहा था, परन्तु ईश्वर ही जाने इसकी असली वजह क्या थी? ठण्डे देशों में भी, जहां दो से तीन फीट और कभी-कभी तो बहुत भरी हिमपात हुआ करता था, इस साल भारी-भरकम तो क्या हल्की-फुल्की बरफ भी नहीं पड़ी थी. इन इलाकों के सभी विद्यालय प्रायः पहले से ही तीन चार दिन हिमपात-अवकाश (snow day) की आशंका से वार्षिक तिथिपत्र (annual calendar) में शामिल कर लेते थे. इस साल हिमपात अवकाश का इस्तेमाल न हो पाने की वजह से इन विद्यालयों को भी गर्मी की छुट्टियों में तीन-चार दिन पहले ही बंद कर दिया गया था. बच्चों का खुश होना लाजमी था, अतः उन्होंने इसकी शिकायत भी नहीं की अपितु इस निर्णय से उल्लसित और पुलकित ही हुए थे. परन्तु न जाने क्यों संचिता इन घटनाओं को किसी अदृश्य शक्ति का संकेत समझती थी. आखिर ये क्या रहस्य है? वो शक्ति क्या सन्देश देना चाहती है? उसका मन बस इसी गुत्थी को सुलझाने में उलझा रहता था. इस बार गर्मी के मौसम में प्रकृति की मनमानी साफ महसूस होने लगी थी. सुबह-सुबह तापमान कभी ३५-४० डिग्री फारेनहाइट होता तो दोपहर तक ८०-८५ तक पहुंच जाता. चालीस पचास डिग्री का अंतर कोई मामूली अंतर नहीं होता. ऑफिस जाने के लिए कपड़ों का चुनाव करना भी मुश्किल हो जाता. गर्मी के कपड़े पहने जायें अथवा सर्दी के?

> *सिर्फ इतना ही पढ़ पाए 'I have lost my job...' दोनों अवाक् रह गए, बाकि क्या लिखा था वो नहीं पढ़ पाए थे. इतनी भीषण गर्मी में बेहाल और लाचार उस परिवार को देखकर दोनों का हृदय करुणा से भर उठा.*

परन्तु कल कुछ अलग ही हुआ. सुबह साढ़े छः सात बजे ही तापमान ९० डिग्री फारेनहाइट तक पहुंच चुका था. मौसम विभाग की भविष्यवाणी, 'दोपहर तक सौ के ऊपर जाने की संभावना' ने तो आग में जैसे घी का काम किया था.

शुक्रवार की सुबह थी, संचिता और सुधीर को ऑफिस जाना था अतः जल्दी जल्दी नहा धोकर तैयार हुए. प्रतिदिन की दिनचर्या के अनुसार सुधीर व्यायाम, पूजा-पाठ और नाश्ता करके तैयार हुए और संचिता भी घर के छोटे मोटे काम निपटती हुई दोपहर के भोजन का इंतजाम करके तैयार हुई. फिर हमेशा की तरह ये सोचकर कि सुबह का नाश्ता करने में कहीं देर न हो जाये, गाड़ी में ही नाश्ता करने का निश्चय किया. फटाफट एक बेगल टोस्टर में टोस्ट किया, उस पर चीज़ चुपड़कर नेपकिन में लपेटकर पास में रख दिया.

फिर बैग में ऑफिस का परिचय पत्र, सेल फ़ोन की मौजूदगी की तसल्ली करके गाड़ी में जाकर बैठ गई.

दोनों ही अपना-अपना बैग पीछे की सीट पर रखकर आगे बैठ गए. दोनों का गन्तव्य सिर्फ पांच मिनट की दूरी पर ही था. घर से ऑफिस का सफ़र करीब एक घंटे का था, जो कभी भारतीय संगीत, भजन और समाचार तो कभी-कभी कवि सम्मेलनों का आनंद लेते हुए बीत जाता. जिंदगी से कोई शिकवा कोई शिकायत नहीं थी.

रस्ते में यातायात बत्ती के लाल होने पर जब गाड़ी रुकी तो सामने की मर्सडीज में पीछे की सीट पर बैठे, नहीं-नहीं खड़े एक सफेद कुत्ते पर संचिता का ध्यान आकर्षित हुआ तो उसने सुधीर का ध्यान भी उधर दिलाया. भाई वो कुत्ता पीछे की खिड़की से झाँक रहा था तो फिर खड़ा ही होगा न? उसे देखकर किसी संभ्रान्त परिवार से उसका ताल्लुक होने का अनुमान लगाया जा सकता था. उसकी वेश-भूषा, हाव-भाव, रहन-सहन सब उसकी सभ्यता का ही प्रमाण दे रहे थे. कुशल हाथों द्वारा सँवारे गए से लम्बे, घने और श्वेत बाल बड़े करीने से उसके इर्द-गिर्द ऐसे लटक रहे थे जैसे किसी शैम्पू का प्रचार करने वाली अभिनेत्री के होते हैं. वो न तो मनुष्य बिरादरी में पैदा हुए आवारा लोगों की तरह बेशर्मी से घूर-घूर के किसी एक व्यक्ति या वास्तु की ओर देखता था और न ही अपनी श्वान बिरादरी के कुछ गन्दे, असभ्य और सड़क छाप कुत्तों की तरह जीभ निकाल कर लार ही टपका रहा था. वो तो बस शांत, संतुष्ट और निर्विकार भाव से अपनी मर्सडीज़ जिसे उसका मालिक (अथवा नौकर?) चला रहा था, के पीछे आने वाले सभी वाहनों और सड़क के दोनों ओर बने बाजार का मुआयना कर रहा था. दुनियावालों को जिंदगी की दौड़ में इस कदर अन्धाधुन्ध भागते देख मन ही मन पूरी मानव जाति पर तरस खा रहा था (शायद?).

उसने एक बार संचिता और सुधीर की ओर भी देखा परन्तु उसके और उनके बीच किसी भी दिलचस्पी की संभावना की अनुपस्थिति का भान होते ही उसने अपना रुख वापस बाईं ओर कर लिया फिर दाहिनी ओर, परन्तु संचिता और सुधीर की ओर वापस पलट कर नहीं देखा.

'देखिये तो इस भयानक गर्मी में मर्सडीज की ठंडी हवा में कैसे मजे से तफरी करने निकला है'

संचिता ने कहा. 'हाँ कुछ अच्छे कर्म किये हैं इसने अपने पिछले जन्म में, तभी तो...' सुधीर ने भी मुस्कुराते हुए कहा. फिर कुछ याद आते ही बताया, 'एक दिन पहले की ही खबर है, एक पिता जो अपने बच्चे को डे केयर में छोड़ने की बजाय अपनी गाड़ी में ही भूलकर ऑफिस चला गया. थोड़ी देर बाद उस इलाके में काम करने वाले किसी दूसरे व्यक्ति ने पार्किंग लाट की तपती गाड़ी में एक मासूम बच्चे को देखकर तुरंत ९११ पर संपर्क किया और पुलिस को बुलाया, चन्द मिनटों में ही पुलिस आई, ताला तोड़ा और बच्चे को सही सलामत बहार निकाल लिया. गाड़ी का तापमान १०० डिग्री

> वो तो बस शांत, संतुष्ट और निर्विकार भाव से अपनी मर्सडीज़ जिसे उसका मालिक चला रहा था, के पीछे आने वाले सभी वाहनों और सड़क के दोनों ओर बने बाजार का मुआयना कर रहा था.

फारेनहाईट तक पहुँच चुका था संभवतः इसी वजह से बच्चे का चेहरा लाल हो रहा था. पुलिस बच्चे को, प्राथमिक उपचार करके थाने ले गई और बाद में पिता को भी हथकड़ी लगा कर ले गई. पता नहीं अब आगे क्या होगा? उस बच्चे को परिवार से अलग रखा जाएगा या फिर वापस दिया जायेगा? ईश्वर ही जाने.'

अमेरिकी आँकड़े के अनुसार अभी पिछले साल करीब ७० बच्चे माँ-बाप की ऐसी भूल और लापरवाही की वजह से अपनी जान गँवा चुके हैं. हर साल ऐसी तमाम घटनाओं में या तो बच्चे दम तोड़ चुके होते हैं या उन्हें परिवार से छीन लिया जाता है.

फिर इस समस्या से बचने के लिए किसी यंत्र के ईजाद करने की बातें हुई. एक ऐसा यन्त्र बनाना चाहिए जो ड्राइवर को गाड़ी रोकने के बाद ये याद दिला सके कि उनकी कार में पीछे भी कोई बैठा है, कृपया उन्हें भी उतारने की कृपा करें.

बातों ही बातों में दोनों की मंजिल पास आ गई. पत्नी को उसके ऑफिस छोड़ते हुए सुधीर अपने ऑफिस की ओर चले.

फिर साप्ताहिक सभाओं, काम-काज और अगले हफ्ते की योजना बनाने में शुक्रवार का दिन भी ख़त्म हुआ. शाम को सुधीर संचिता को लेने उसके ऑफिस पहुंचे. बाहर बेहद गर्मी थी. 'उफ़ ये कहाँ से इतनी गर्मी आ गई है?' कहते हुए संचिता गाड़ी में बैठी तो सुधीर ने कहा 'अभी तो कार के अन्दर कुछ गनीमत है, जब मैं अपने ऑफिस से निकलकर इसमें बैठा तब तो ये बिलकुल भट्ठी की तरह तप रही थी.'

गाड़ी में गैस बहुत कम हो रही थी अतः रस्ते में दोनों एक गैस स्टेशन पर रुके. यूएसए में, न्यूजर्सी को छोड़ कर, प्रायः सभी प्रान्त में लोग गैस खुद ही भरते हैं सो सुधीर ने क्रेडिट कार्ड से मशीन में दाम अदा करके गैस भरना शुरू किया. इतने में जब आगे वाली कार की टंकी भर चुकी तो वो ड्राइवर चला गया फिर एक दूसरी कार वहाँ आ गई. उस कार में एक अमेरिकी जवान जोड़ा बैठा था. नौजवान बाहर निकला, क्रेडिट कार्ड से मशीन में दाम अदा किया और गैस पाइप को कार की टंकी में लगाकर वापस अपनी सीट पर आकर बैठ गया. उन दोनों के पास करीब ३-४ मिनट का समय था भला

उसे व्यर्थ कैसे गवां देते? बस कुछ सेकेंड में ही दोनों के चेहरों के बीच की दूरी बिलकुल शून्य हो गई. उनकी ये हरकत देखकर संचिता ने खुद ही शर्म से निगाहें दूसरी तरफ कर लीं. फिर सोचने लगी, खैर जब १९७० के दौरान भारतीय फिल्मों में कुछ ऐसे गाने हुआ करते थे 'खुल्लम- खुल्ला... इस दुनिया से नहीं डरेंगे हम दोनों...' तो फिर अमेरिका में २०१२ में जो कुछ भी देखने और सुनाने को मिले वो कम ही होगा. इन लोगों का भी जवाब नहीं, इनकी इतनी कशिश इतना प्यार सब कुछ फिर नफरत में क्यूँ बदल जाता है? क्या पता इस समाज में उपयोग करके फेंकने लायक (disposable) वस्तुओं की तरह ही इनके रिश्ते भी disposable होते होंगे? ये संचिता की समझ से बाहर था.

खैर गैस भरने के बाद रसीद लेकर इसी बीच सुधीर वापस कार में आ गए और चुहल करते हुए कहा 'अरे-अरे ये दोनों तो बड़े बेशरम हैं. जगह, मौसम और माहौल भी नहीं देखा, ऐसे शुरू हो गए जैसे लाज-लिहाज और शर्म से दूर-दूर तक कोई रिश्ता ही न हो इनका.'

'हाँ, मालूम होता है बहुत ही व्यस्त दिनचर्या है इन दोनों की, बहुत जल्दी में हैं, क्या पता इस मिलन के बाद अभी और कुछ लोगों से भी मिलना हो इन दोनों को. तभी तो बाहर की गर्मी, पेट्रोल की महक और अजनबी लोगों से भरे इस व्यस्त गैस स्टेशन की कुछ भी परवाह नहीं है इन्हें' संचिता ने भी हँसते हुए आग में पेट्रोल उडेला.

पति ने कार स्टार्ट की ओर एक बार फिर घर की तरफ चल पड़े. उनकी कार गैस स्टेशन वाले शॉपिंग काम्प्लेक्स के कोने तक पहुंची. अभी मुश्किल से १००-२०० मीटर भी न गए होंगे की उनकी नजर उस कोने पर खड़े एक परिवार पर पड़ी, यही कोई २५-३० की उम्र रही होगी उन माँ-बाप की और दो से तीन साल उम्र होगी उनके दो मासूम बच्चों की. पिता अपने हाथ में एक तख्ती लिए हुए था, जो शायद किसी दफ्ती के बॉक्स को फाड़कर बनाया गया था. हरी बत्ती होने की वजह से तुरत वहाँ से निकलना पड़ा, पीछे और गाड़ियाँ जो थीं. उन कुछ क्षणों के अंतराल में उस तख्ती पर लिखे केवल कुछ शब्दों पर ही उन दोनों की नजर पड़ी. सिर्फ इतना ही पढ़ पाए 'I have lost my job...' दोनों अवाक् रह गए, बाकि क्या लिखा था वो नहीं पढ़ पाए थे. इतनी भीषण गर्मी में बेहाल और लाचार उस परिवार को देखकर दोनों का हृदय करुणा से भर उठा. उनकी गाड़ी शॉपिंग काम्प्लेक्स से बाहर मुख्य सड़क पर पहुँच गई. दोनों मन ही मन उन्हें मदद देने के लिए बेचैन हो उठे थे, परन्तु कुछ भी कह पाने में अपने आपको असमर्थ पा रहे थे. वैसे ऐसा नहीं था कि अमेरिका में किसी को भीख मांगते हुए उन्होंने पहले नहीं देखा था, वो तो देखने में कुछ नशेड़ी जैसे लोग हुआ करते थे. परन्तु आज तो कुछ अलग ही दृश्य था. बाहर का तापमान भी और दिनों की तुलना में कही ज्यादा था. इस चिलचिलाती गर्मी में अपने दो बच्चों और पत्नी को लेकर मजबूर एक पिता/पति को देखकर दोनों विचलित हो उठे थे.

प्रतिदिन अखबारों में गिरती अर्थ-व्यवस्था और आँकड़े को देखना और पढ़ना और बात होती थी परन्तु अचानक एक परिवार को इस हालात में देखना और उनकी गुहार को एक तख्ती पर पढ़ना, बिलकुल अलग था. इसके प्रभाव का वर्णन शायद शब्दों में नहीं किया जा सकता था, सिर्फ महसूस किया जा सकता था. किसी तरह पति ने ही चुप्पी तोड़ी और पूछा, क्या करना चाहिए? अपने मन की बात पति के मुख से सुनकर संचिता ने भी बिना समय बर्बाद किये कहा 'गाड़ी मोड़ लीजिये, हमें उनकी कुछ मदद करनी चाहिए' संचिता ने भरे गले से कहा. फिर कुछ देर तक दोनों में कोई संवाद नहीं हुआ. सुधीर ने अगली यातायात बत्ती पर गाड़ी को वापस घुमाने (u turn) की अनुमति न होने की वजह से बायाँ मोड़ ले लिया. और ये सोचकर की शायद अन्दर ही अन्दर दूसरे रस्ते से होकर उस जगह वापस पहुंच जाये, गाड़ी चलाते रहे. इस बीच दोनों अपनी-अपनी आँखों में बिन बुलाये आई नमी को सुखाने का प्रयत्न (या अभिनय?) करने लगे. पत्नी अपने पर्स में से नोट निकल कर हाथ में पकड़ कर बैठी थी की कहीं फिर उस जगह देर तक गाड़ी खड़ी न कर पाए तो जल्दी से शीशा नीचे करके दिया जा सके. परन्तु काफी दूर तक गाड़ी चलने के बाद भी वो वहाँ नहीं पहुंच सके जहां उन्हें पहुंचना था. चार-पांच मील चलने के बाद फिर से वापस मुड़े और ठान लिया की अब तो उस परिवार को मदद किये बगैर लौटना नहीं है चाहे जितना भी समय लग जाये. कुछ ही देर बाद वो वहाँ एक बार फिर पहुंचे जहाँ गर्मी से बेहाल, पसीने से लथपथ वो परिवार मदद की आशा में, एक पेड़ के नीचे, अब भी इंतज़ार कर रहा था. उनके चेहरे लाल हो गए थे. संचिता ने झट से शीशा नीचे करके वो नोट पिता की तरफ बढ़ा दिया. उनकी नजरें मिलीं और नोट को थामने के बाद उसने धन्यवाद देते हुए दुहराया 'God Bless you! God Bless you.!' फिर हरी बत्ती होने की वजह से वहाँ और देर रुकना संभव नहीं था. गाड़ी फिर अपने घर की ओर मोड़कर दोनों वापस चल पड़े. इस बार मन में थोड़ी सी तसल्ली थी ये सोच कर कि आज वो कम से कम खाना तो खा सकेंगे.

रास्ते भर तरह-तरह के विचार मन में आते रहे. अचानक सुबह वाली मर्सडीज़ और उसमें बैठे कुत्ते की याद भी आ गई. कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि कौन ज्यादा भाग्यशाली है, मर्सडीज़ की ठंडी हवा में बैठा श्वान कुल में पैदा हुआ वो प्राणी अथवा मनुष्य कुल में जन्मा, मानव शरीर धारी, चिलचिलाती गर्मी में बेहाल एक पेड़ की छाँव तले आश्रय लेने को मजबूर ये परिवार? पता नहीं उनका घर भी बचा है या नहीं? रात कहाँ ओर कैसे गुजरेगी उनकी? हे ईश्वर ये कैसी विडम्बना है? आप क्या सन्देश देना चाहते हैं? हे प्रभु! कृपया मार्गदर्शन करें. अक्सर ज्ञानी जनों के मुख से सुना है कि मनुष्य का जन्म बड़े ही भाग्य से मिलता है. फिर ये कैसी पहेली आज आपने मेरे सामने रखी है? एक तरफ तो वो

कुत्ता, दूसरी तरफ ये परिवार. कुछ भी समझ नहीं आ रहा था. इसी उधेड़-बुन में खोये-खोये, थोड़ी देर में वो अपने घर पहुँच गए.

शुक्रवार की शाम थी, बच्चों ने पिज्जा खाने की इच्छा जाहिर की. पिज्जा मँगवाया गया सबने पिज्जा खाया और सप्ताहान्त होने की वजह से घर में भी आराम का माहौल था. बच्चों की गर्मी की छुट्टियाँ चल रही थी अतः उन्होंने भी दोस्तों के साथ पास में ही सिनेमा देखने की योजना बनाई और चले गए. करीब एक घंटे ही बीते होंगे कि अचानक बड़ी जोर से बारिश शुरू हो गई. काफी तेज हवा चल रही थी और रह-रह कर बिजली भी कड़कती-चमकती थी. संचिता के विचारों में बार-बार उस परिवार का चेहरा घूम जाता, जाने किस हालत में होंगे वो. आज की बारिश भी कुछ अजीब थी. शोर-गुल के साथ-साथ तेज हवा के झोंके अपने रास्ते में पड़ने वाली हर चीज़ को अपने साथ ही उड़ा ले जाने पर आमादा थे. हवा के इन झोंकों ने बाहर पड़े फर्नीचर को भी नहीं बख्शा. मेज, कुर्सी को इनकी जगह से हिला कर तितर-बितर कर दिया था. सभी कुर्सियों ने तो हवा के आगे अपने दोनों घुटने ही टेक दिए थे. उस दिन छतरी बाहर खुली छूट गयी थी, हवा ने उसे भी अपने साथ उड़ाकर, दूर ले जाकर छोड़ा था. उस छतरी से जुड़ी कांच वाली मेज भी उसे रोकने की नाकाम कोशिश करते-करते लुढ़क गयी थी (पुरानी फिल्म के उस दृश्य की तरह जिसमें अभिनेत्री अपने आवारा पति को रोकने की लाख कोशिश करती है पर वो उसे ठुकराकर चल देता है अपने स्वर्गनुमा जहन्नुम की ओर). परन्तु चमत्कार ये कि कांच की मेज ने अपने आपको बचा लिया था, बिलकुल टूटने नहीं दिया था. एक खरोंच भी नहीं आई थी उस पर. शायद उसे पता था कि कल जब ये आवारा हवा के झोंके यहाँ से रुखसत होंगे एवं मदमस्त बारिश भी यहाँ से दफा होगी, तब फिर से ये छतरी भी वापस आकर उसके साथ ही बंध जाएगी.

कुछ ही देर में बत्ती भी गुल हो गई. अक्सर दो तीन सेकंड में ही बत्ती आ जाती थी परन्तु आज तो दस पंद्रह मिनट के बाद भी बत्ती नहीं आई. सुधीर ने टार्च लेकर गराज में जाकर कार के रेडियो पर सुना कि पूरे शहर ही नहीं आसपास के दो तीन प्रान्तों की भी बत्ती गुल हो गई है. समस्या गंभीर मालूम होती है. अब क्या करें? टीवी बंद, टेलीफ़ोन में बैटरी सिर्फ कुछ घंटे के लिए ही थी. बच्चों ने फोन पर बताया कि सिनेमा हॉल में भी बिजली न होने से प्रदर्शन रद्द कर दिया गया है और उन्हें मुफ्त टिकट देकर घर भेजा जा रहा है. ऐसा यहाँ पहले कभी नहीं हुआ था. पूरी रात बिना बिजली के ही बीती. भारतीय मूल के लोगों के लिए तो ये कोई परेशानी वाली बात नहीं थी. बिजली कटौती का अनुभव यहाँ पर काम आया था. उन्हें गुस्सा नहीं आया. परन्तु अमेरिका के लोग तो त्राहि-त्राहि करने लगे थे. सुबह हो गई बत्ती का कोई पता नहीं चला. घर के सभी फ़ोन भी सिग्नल न मिल पाने से काम नहीं कर रहे थे. लोगों का गुस्सा सातवें आसमान पर जा पहुंचा जब रेडियो पर ये पता चला कि कल आये तूफान में भरी नुकसान हुआ था और शायद एक हफ्ता और लग सकता था बिजली को पूरी तरह से वापस आने में. इसके पहले भी आंधी तूफ़ान आते थे पर ऐसी क्षति पहले कभी नहीं हुई थी इस इलाके में. दूर-दूर से, पूरे यूएसए और पड़ोसी देश कनाडा से भी विशेषज्ञ बुलाये जा रहे थे. शाम होते-होते करीब अट्ठारह घंटे बाद सुधीर, संचिता के घर बत्ती आई. टीवी पर समाचार देखा तो पता चला कि अभी भी सब जगह बिजली नहीं आई थी. और अगले शुक्रवार तक सभी जगहों पर पूरी तरफ से बिजली आ जाएगी.

संचिता बार-बार यही सोचती थी कि शुक्रवार कि सुबह से ही क्या हो रहा था? प्रकृति भी इतने भयानक रूप में क्यों थी? क्या इसमें इसका कोई सन्देश है? अगर हाँ तो वो क्या है? मुझे मालूम कैसे होगा? मगर हमेशा की तरह फिर कुछ समझ नहीं आ रहा था. बस बार-बार सुबह से शाम तक देखे गए दृश्य आँखों के सामने एक चलचित्र की भांति घूम जाते थे. कभी मर्सडीज़ में चैन से तफरी करता कुत्ता. कभी वो भुलक्कड़ पिता जिसने अपने बच्चे को कार में ही छोड़ दिया था. कभी वो प्रेमी जोड़ा. कभी चिलचिलाती गर्मी में वो मासूम बच्चे. और कभी उनके मजबूर माता-पिता. जैसे सभी मूक भाषा में कुछ कह रहे थे. ख़ास कर वो कुत्ता जिसका मालिक (या ड्राइवर?) यकीनन उसे बहुत चाहता होगा. ऐसा लगा जैसे सभी ये गीत गा रहे हों.

'तुम मुझे यूँ भुला न पाओगे... जब कभी भी मिलोगे मीत मेरे, तंग-तंग तुम भी भुन्भुनाओगे...'

■

मधु अरोड़ा

४ जनवरी १९५८ को जन्म. शिक्षा : एम. ए., सामाजिक विषयों पर लेखन, कई लेखकों के साक्षात्कार प्रकाशित एवं आकाशवाणी से प्रसारित. रेडियो पर कई परिचर्चाओं में हिस्सेदारी, मंचन से भी जुड़ी हैं. सम्प्रति - एक सरकारी संस्थान में कार्यरत.

संपर्क : एच-१/१०१, रिद्धि गार्डन्स, फिल्म सिटी रोड, मालाड (पूर्व), मुंबई-४०००९७

ईमेल : shagunji435@gmail.com

बातचीत

प्रख्यात उपन्यासकार असग़र वजाहत से मधु अरोड़ा की बातचीत

मधु अरोड़ा : बचपन की घटनाएँ, छवियाँ या कच्ची उमर के सपने, महत्वाकांक्षाएँ और उन सपनों का टूटना. ये सारी स्थितियाँ हर लेखक के लेखन में बार-बार आती हैं. आप इसे किस रूप में लेते हैं ?

असग़र वजाहत : अतीत कभी पीछा नहीं छोड़ता. वह चाहे-अनचाहे सबके अंदर जगमगाता रहता है. जहाँ तक मेरा सवाल है मैं एक ऐसी पीढ़ी का सदस्य हूँ जिसका अपना घर हुआ करता था. अपना मोहल्ला होता था. शहर होता था. कस्बा होता था. अब ऐसा नहीं है. यानी आज की युवा पीढ़ी या उसके बहुत से लोग इस अपनेपन से खाली हैं.

बचपन और लड़कपन न सिर्फ बार-बार रचनाओं में झांकता है बल्कि वह व्यक्तित्व का हिस्सा बन जाता है और इस तरह लेखक की रचनाओं में सदा बना रहता है. मैं आपको अपना उदाहरण देकर बताऊँ. अपनी तमाम बुराइयों अच्छाइयों के साथ मैं अपने आपको एक ऐसा आदमी मानता हूँ जो अराजक तो नहीं है पर पूरी तरह अनियोजित है. योजनाबद्धता मेरे स्वभाव में नहीं है क्योंकि मेरा बचपन और लड़कपन जिस माहौल में बीता वहाँ यह न थी. वहाँ बेफिक्री और मस्ती थी. वहाँ भविष्य का डर नहीं था. वहाँ यह सवाल ही न पैदा होता था कि कभी बुरे दिन भी आ सकते हैं. वहाँ जितना पैसा आता था, अनाज आता था, फल आते थे, सब खा लिए या बाँट दिये जाते थे क्योंकि यह पक्का विश्वास था कि आते रहेंगे.

एक मज़ेदार बात ये बताऊँ कि मेरे पिताजी को जब उनके किसी काम या जायदाद या खेतीबाड़ी से पैसा मिलता था और उनका कोई कारिन्दा या नौकर उनके हाथ में पैसा देता था तो वे बहुत नाराज़ होते थे. कारण यह था कि उन्हें पैसे गिनना पड़ते थे और अब्बा गणित में ही नहीं, गिनती करने में बहुत कमज़ोर थे और उन्हें इसके लिए बड़ा परिश्रम करना पड़ता था इसलिए वे आमदनी होने और पैसे दिए जाने पर नाराज़ हो जाते थे. जो पैसे देता या लाता था उससे ही कहते थे कि गिनो. इसका असर आप मानें या न मानें मेरे ऊपर कुछ इस तरह पड़ा है कि मैं लगातार दस-पन्दरह मिनट तक पैसे या कुछ और गिनने का काम नहीं कर सकता या नहीं करना चाहता. जब ईरान गया था. वहाँ एयरपोर्ट पर पचास डालर चेंज कराये तो बैंक वाले ने नोटों का एक गड्डर पकड़ा दिया. मैं हैरान रह गया. पर समझ गया कि पैसा एक्सचेंज रेट से हिसाब से दिया जा रहा है. लेकिन मैं सच बताऊँ के बैंक के काउण्टर पर या पीछे पड़ी कुर्सियों पर बैठ कर सारे नोट गिनने का कष्ट मैंने नहीं किया और मान लिया कि यार जो दिया है ठीक ही होगा.

स्वभावगत बेफिक्री, मस्ती, खिलंदड़ापन और लोगों तथा चीज़ों पर पक्का विश्वास लेखन में भी तो झलकता होगा क्योंकि वह स्वभाव का हिस्सा बन चुका है.

कच्ची उमर का एक सपना अब तक साकार करने की कोशिश में लगा हुआ हूँ. यह सपना है दुनिया देखने का सपना. लगता है अभी कुछ नहीं देखा है. कभी-कभी मज़ाक में दोस्तों से कहता हूँ कि मेरी एक छोटी-सी इच्छा है. वह यह कि संसार में जितनी भी जगहें हैं उन्हें देख लूँ और जितने भी लोग हैं उनसे मिल लूँ.

सपनों का टूटना, सबसे पहले सबसे बड़े सपने के टूटने के बारे में बताऊँ. यह सपना था अपने समाज, लोगों और देश के बारे में. सोचा था सब कुछ अच्छा होगा. एक 'भयमुक्त'

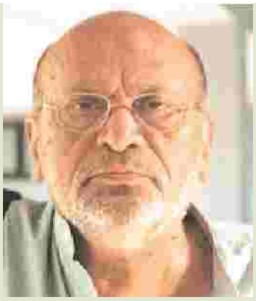

असग़र वजाहत

५ जुलाई १९४६ को फतेहपुर में जन्म. अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी से एम.ए. और पीएचडी. लिखने की शुरूआत कॉलेज के दिनों से हुई. लघु कथा, नाटक, उपन्यास और दीगर विषयों पर दर्जनों आलेखों का प्रकाशन. अभी तक १९ किताबें छप चुकी हैं, जिनमें पांच कथा संग्रह, चार उपन्यास, छह नाटक और नुक्कड़ नाटकों के संग्रह शामिल हैं। अंग्रेजी, रूसी और इतालवी में कहानियों का अनुवाद हुआ. फिल्मों और टेलीविजन के लिए भी लिखा. कोलाज, रेखाचित्रण और फोटोग्राफी में भी दखल रखते हैं. पांच साल तक बुदापेस्ट, हंगेरी में हिंदी के प्रोफेसर. अनेक पुरस्कार और सम्मान मिल चुके हैं. संप्रति : जामिया मिलिया इस्लामिया यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर और हिंदी के विभागाध्यक्ष.

> कुछ भी लिखते हुए सबसे पहले तो लेखक को ही यह लगना चाहिए कि उसे लेखन में मज़ा आ रहा है. मज़ा आने से मेरी मुराद यह है कि लेखक जो कहना चाहता है वह कह पा रहा है या नहीं?

समाज और देश बनेगा. सोचा था ग़रीबी कम होगी. असमानता घटेगी. लोग स्वस्थ और शिक्षित होंगे. अपराध कम होगा. जीवन स्तर बेहतर होगा. लेकिन राजनीतिज्ञों, नौकरशाहों और पूंजीपतियों ने मिल कर हमारी पीढ़ी के इस सपने को फिलहाल चकनाचूर कर दिया है.

एक और सपना था हिन्दी भाषा और साहित्य को लेकर. वह यह था कि हिन्दी क्षेत्र में यानी पचास-साठ करोड़ लोगों की भाषा के क्षेत्र में भाषा-साहित्य और संस्कृति फूले-फलेगी. लेकिन आज स्थिति यह है कि हिन्दी की किताबें कुछ हज़ार भी नहीं बिकतीं. हिन्दी में अनूदित साहित्य विश्व साहित्य और भारतीय साहित्य कितना है? शब्दकोश और विश्वकोश कितने हैं? समाज विज्ञान या विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी कहाँ है? आज तो हिन्दी के समाचार-पत्र भी अपने को हिन्दी क्षेत्र की संवेदना से अलग कर रहे हैं. हिन्दी समाचार-पत्र अंग्रेजी की धुआँधार नक़ल में अजीब तरह से हास्य और करुणा के विषय बन गये हैं. हिन्दी के नाम पर करोड़ों-खरबों रुपया हर साल नष्ट हो जाता है. यह भी एक स्वप्न का टूटना ही तो है. मेरे ख्याल में सबसे दुखद अपने को असहाय, मजबूर और विवश पाना ही होता है. हिन्दी क्षेत्र के संदर्भ में मैं यही महसूस करता हूँ. यह वही क्षेत्र है जहाँ संसार के सबसे बड़े साम्राज्य की नींव हिला दी गयी थी. जहाँ एकता और बलिदान की भावना अपने शिखर पर थी. जहाँ सामाजिक और सांस्कृतिक जागरूकता का डंका बजता था. वहाँ आज क्या है? भयानक और आक्रामक धर्मान्धता. साम्प्रदायिकता, जातिवाद, हिंसा और अपहरण. भ्रष्टाचार लोकतंत्रिक मूल्यों का विघटन. नागर समाज का घोर पतन. ये सब कैसे हुआ? क्यों हुआ? किसने किया? हम क्या कर रहे थे जब यह सब हो रहा था? अब क्या वास्तव में हम उसके सामने अपने को मज़बूर महसूस करते हैं? यह सपनों का टूटना है. यही स्थितियाँ और इनके विभिन्न स्वरूप मेरे लेखन में प्रतिध्वनित होते हैं.

माफ करें मैं इतना दार्शनिक, कलात्मक, पारदर्शी, गतिशील नहीं होना चाहता कि उसमें मेरा लेखन खो जाये या केवल बौद्धिक प्रलाप बन जाये.

'कैसी आगी लगाई? में आपने एक छात्र के ज़रिये राजनीति, छात्र आन्दोलन, सपने आदि के सातवें दशक के कालखंड को सामने रखा है. इस कालखंड के आगे-पीछे की कड़ियों के बारे में आप क्या कहना चाहेंगे?

'कैसी आगी लगाई' उपन्यास त्रयी का पहला भाग है. यह स्वप्न देखने, उसके टूटने और उसे जोड़ने की आकांक्षा की त्रयी होगी. पहला भाग एक पृष्ठभूमि है जिसमें जीवन अपने विविध रंगों के साथ, छात्र जीवन और सपनों के टूटने का जिक्र है. यह हिस्सा एक अर्थ में जीवन का प्रारंभ है. 'आग' प्रतीक है जो जीवन की पहली शर्त है. यह आग एक जीवन को जन्म देती है जो निरंतर आगे बढ़ता जाता है. हमारी पीढ़ी के सपने बनते हैं और टूटते हैं. सपने टूटने का जो सिलसिला 'कैसी आगी लगाई' के अंतिम हिस्सों से शुरू होता है वह दूसरे भाग में अपने चरम पर पहुँचता है. तीसरा भाग उस टूटे सपने को पुनः स्थापित करने का काम करेगा और इस प्रक्रिया में पिछले और आनेवाले वर्षों को साकार करने का प्रयास किया जायेगा. यह त्रयी 'आज़ादी से आज़ादी तक' की ही त्रयी कही जा सकती है. पहली आज़ादी हमें साम्राज्यवाद से मिली थी और दूसरी आज़ादी की लड़ाई अधिक जटिल है. जो बहुआयामी है. जो ज्यादा लम्बी चलने वाली है. यह 'आज़ादी' की लड़ाई अपनी जड़ता से भी है. साम्प्रदायिकता से है. जातिवाद से है. क्षेत्रीयतावाद से है अंधविश्वासों से है. हिंसा और अपराध से है तथा दूसरी ओर यह लड़ाई नव साम्राज्यवाद से है. यह लड़ाई भूमण्डलीकरण और बाज़ारवाद से है. यह लड़ाई लोकतंत्र के उस रूप से भी है जो 'वोटों' के लिए हमें विभाजित करता है और हमारा शोषण करता आया है.

इस तरह उपन्यास त्रयी अतीत और भविष्य को अपने अंदर समेटने का प्रयास करेगी.

आप एक सिद्धहस्त लघु कथाकार, कहानीकार, नाटककार और उपन्यासकार हैं. इनमें से किस विधा में ज्यादा सहज महसूस करते हैं?

देखिए मुख्य बात यह है कि विषयवस्तु लेखक को किस 'रूप' में संतुष्ट करती है. मुझे लगता है कुछ भी लिखते हुए सबसे पहले तो लेखक को ही यह लगना चाहिए कि उसे लेखन में मज़ा आ रहा है. मज़ा आने से मेरी मुराद यह है कि लेखक जो कहना चाहता है वह कह पा रहा है या नहीं? कुछ विषय ऐसे होते हैं जो लघु कहानी में जितने सटीक बैठते हैं उतना लम्बी कहानी या उपन्यास में नहीं बैठ सकते. इसी तरह प्रत्येक विषय अपने लिए स्वयं 'फार्म' को चुन लेता है. कभी-कभी इसमें ग़लती भी हो सकती है. पर प्रायः होता यही है. 'फार्म' बदलने का दबाव बाहरी परिस्थितियां भी बनाती है. आपातकाल के दौरान मुझे लगा था कि पहले जैसे कहानियां लिखा करता था वैसी, उस तरह की, उस शैली में नहीं लिखी जा सकती इसलिए शैली और फार्म में बदलाव आया था.

प्रतीकात्मक कहानियाँ लिखी थीं, लघु-पंचतंत्र शैली की कहानियाँ लिखी थीं.

आप अध्यापन, लेखन के साथ-साथ चित्रकारी, फोटोग्राफी में भी बहुत दिलचस्पी रखते हैं, आप इन सारी विधाओं के साथ कैसे सामंजस्य बिठा पाते हैं?

पहली बात तो यह है कि मैं बचपन में चित्रकार बनना चाहता था लेकिन उस समय चित्रकारी के संबंध में मध्यम वर्ग के लोगों की राय बहुत अच्छी नहीं थी. इसलिये मैं चित्रकारी पढ़ नहीं सका, चित्रकारी कर नहीं सका. यह इच्छा मन में दबी रही और समय-समय पर रंग और चित्र आकर्षित करते रहे. कुछ चित्रकारी तो मैं १०६३-६४ से करता रहा हूं लेकिन १९९४ के आसपास जब मैं हंगरी में था तो वहां मेरी चित्रकला की प्रदर्शनी आयोजित की गई थी. फिर उसके बाद तो आजकल कंप्यूटर पर तरह-तरह के चित्र बनाता हूं. रही बात सामंजस्य बिठाने की तो अंदर से जैसी डिमांड होती है वैसा ही सामंजस्य बैठ जाता है. यह मन के ऊपर की बात है. जब चित्र बनाने का मन होता है, चित्र बना लेता हूं. जब फोटोग्राफी का मन होता है, फोटो खींच लेता हूं.

चार कहानी संग्रह, तीन उपन्यास और छः नाटक लिख लेने पर आप जिस मुकाम पर हैं, वहाँ पहुँचने पर आप कैसा महसूस करते हैं?

ये तो बड़ा खतरनाक सवाल है जो बेचैन करता है. पहली बात तो यह कि मैंने बहुत नहीं लिखा है. उससे पहली बात यह कि मैंने कम पढ़ा और देखा-सुना, समझा और जाना है. इसलिए मैं अपने आपसे बिल्कुल संतुष्ट नहीं हूँ और यह मानता नहीं कि मैं किसी 'मुकाम' पर खड़ा हूँ. अपना लिखा प्रायः आधा-अधूरा और बचकाना-सा जान पड़ता है. इसलिए मैं असंतुष्ट हूँ और चाहता हूँ कि कुछ ऐसा करूँ जिससे कुछ संतोष मिले. उपन्यास त्रयी को ही लेकर बहुत परेशान हूँ. दूसरे भाग का पहला ड्रफ्ट तैयार किया है पर उसमें भी अनेक झोल, कमियाँ और खामियाँ हैं. देखिए क्या होता है. कभी-कभी तो लगता है कि लेखन कर्म ही अपने आप में ही बेचैन, असंतुष्ट और कभी समाप्त न होने वाले प्रश्नों का सिलसिला है.

> *अपना लिखा प्रायः आधा-अधूरा और बचकाना-सा जान पड़ता है. इसलिए मैं असंतुष्ट हूँ और चाहता हूँ कि कुछ ऐसा करूँ जिससे कुछ संतोष मिले.*

आपके लेखन की सबसे बड़ी खासियत आपकी भाषा की सादगी और किस्सागोई में महारत है, इसे आप कैसे साधते हैं?

सादगी और किस्सागोई मुझे पसंद है क्योंकि उसके संस्कार मुझे मिलते रहे हैं और मेरे जैसे अनपढ़ और अंतर्मुखी व्यक्ति के स्वभाव से मेल खाते हैं. मैं आपसे कोई बौद्धिक विमर्श नहीं कर सकता केवल किस्सा सुना सकता हूँ तो क्या करूँगा? किस्सा ही सुनाऊँगा? मेरे अंदर झूठ बोलने, सहने और संजो कर रखने की बहुत ताक़त नहीं है. हाँ, थोड़ा बहुत दिल रखने के लिए तो चलता है. लेकिन उससे ज्यादा झूठ काफी मुश्किल हो जाता है. इसलिए चाहता हूँ कम से कम लेखन में सच का मज़ा ले लूँ और दूसरों को दे दूँ. बस यही बात है.

आप खूब यात्राएँ करते हैं क्या लेखन में उन यात्राओं की कोई भूमिका होती है?

यात्राएँ तो मैं कल्पना में भी करता हूँ. हर समय किसी भी यात्रा के लिए तैयार रहता हूँ. प्यारे अजीज़ दोस्त और उर्दू के बहुत बड़े कवि शहरयार का शेर है : *हर बार यही घर को पलटते हुए सोचा / ऐ काश किसी लम्बे सफर को गये होते.*

मैं जब बच्चा था तो मेरी दुनिया बड़ी सीमित थी. हम बच्चों पर सख़्ती ये थी कि घर (जो हक़ीक़त में घर था और वैसे घर अब नहीं होते) से बाहर अकेले न जायें. बड़े होने पर भी सूरज डूबने से पहले घर लौटना अनिवार्य था. मैं कुछ कुछ जानने लगा था कि दुनिया बहुत बड़ी है. हालांकि मेरा सामान्य ज्ञान बहुत सीमित था और है भी लेकिन इसके बावजूद लगता था कुछ हज़ार किलोमीटर दूर नया होगा. रोचक होगा. ट्रेनों या ट्रकों को आते-जाते देखता था तो मन में अजीब तरह का रोमांच भर जाता था कि अच्छा बंगाल कैसा होगा? कलकत्ता शहर कैसा होगा? कैसे लोग होंगे? कैसे बाज़ार होंगे? कैसी जिन्दगी होगी? जब अलीगढ़ विश्वविद्यालय आया तो अपने कोर्स की किताबों से ज्यादा मैं विदेशों पर छपी किताबों के पन्ने पलट कर तस्वीरें देखा करता था. अंगूर के बागों में अपनी पारम्परिक वेशभूषा में काम करती सुन्दर लड़कियाँ और पृष्ठभूमि में घास के हरे पहाड़ जैसे मेरे ऊपर जादू कर देते थे और मैं सोचता था सब कुछ छोड़-छाड़ कर चल दूँ. पर उस समय तक पासपोर्ट, वीज़ा वगैरा की जानकारी मिल चुकी थी. लेकिन वे किताबें तो देखता ही रहता था. यही यह सपना पाला था कि पूरे संसार का भ्रमण करूँगा. यह सपना पूरा नहीं हो सका. दरअसल घूमते समय मेरे ध्यान में यह नहीं रहता कि यह अनुभव कहानी उपन्यास में किस तरह शामिल होंगे. लेकिन समय आने पर उनका कहीं न कहीं उपयोग हो जाता है. बीस पच्चीस साल पहले देखी जगहें, बातें, लोग अचानक कहानी का विषय बन जाते हैं.

यात्राएँ कई अर्थों में ताज़ा कर देती है. यह ताज़गी लेखन के लिए ही नहीं जीने के लिए भी ज़रूरी होती हैं.

एक ऐसे दौर में जब पठन और पाठन कम से कम हिन्दी समाज

संस्कृति के प्रति उदासीन समाज में किताबों की क्या स्थिति हो सकती है, आप समझ सकती हैं. यह बात निश्चित रूप से लेखक को हर तरह सालती है. लेकिन भविष्य के प्रति मैं आस्थावान हूँ. स्थिति बदल रही है और बदलेगी.

में बिल्कुल हाशिये पर चला गया है तो लेखन के भविष्य को लेकर आपको क्या लगता है?

फिर बात आ गयी हिन्दी समाज की. इससे पहले मैं इस पर आँसू बहा चुका हूँ. यहाँ यह स्पष्ट कर दूँ कि मैं हिन्दी समाज के महत्व और उसकी ऐतिहासिक भूमिका को मानता और उसका सम्मान करता हूँ तथा 'बीमारू' प्रदेशों वाली धारणा को अस्वीकार करता हूँ.

बहुत सालों से यह सोच रहा था कि हिन्दी प्रदेशों में वैसी सांस्कृतिक जागरूकता क्यों नहीं है जैसे बंगाल, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु आदि में है? भाषा को ही ले लें. पढ़ा-लिखा बंगाली बांग्ला साहित्य और संगीत में रुचि लेता है. नाटक देखता है. पर हिन्दी क्षेत्र का पढ़ा-लिखा आदमी हिन्दी भाषा साहित्य और संस्कृति से विमुख हो जाता है. आप उसके घर में हिन्दी की एक किताब भी न पायेंगे. ऐसा क्यों होता है?

इस मसले पर सोचते-सोचते एक कारण समझ में आया. आप से 'शेयर' कर सकता हूँ. मेरे ख्याल से हिन्दी प्रदेशों में सांस्कृतिक उदासीनता का कारण या बीज १८५७ की असफल क्रांति में छिपे हुए हैं. आप जानती ही हैं कि १८५७ में हिन्दी क्षेत्र की बड़ी प्रमुख भूमिका थी. आप यह भी जानती है कि अंग्रेज़ों के राज को समाप्त कर देने की योजना बहुत लम्बे समय से बनाई जा रही थी. इसमें कोई संदेह नहीं कि इस लड़ाई में राजा, नवाब, मौलवी, पंडित, किसान, दस्तकार और यहाँ तक कि वेश्याएँ भी शामिल थे जो कम्पनी के शासन से बहुत दुखी थे. इसका मतलब यह हुआ हिन्दी क्षेत्र ने यह बहुत बड़ा सपना देखा था. सौ साल के बाद यानी १७५७ में प्लासी की लड़ाई के सौ साल बाद यह क्षेत्र दासता से मुक्त होना चाहता था. आप जानती हैं कि बड़ी लड़ाई लड़ने के लिए पूरा ज़ोर लगा दिया जाता है और सबसे बड़ी ताक़त होती है नैतिक बल. तो इस लड़ाई में अपार नैतिक बल लगा दिया गया था. नैतिक बल का केंद्र था - 'हम सही हैं, हमारी लड़ाई सही है, इसलिए जीत हमारी होगी.' कारण चाहे जो रहे हों. हम लड़ाई हार गये. अब श्याम बेनेगल की फिल्म 'जुनून' का वह दृश्य याद कीजिये जहां क्रांतिकारी नसीरुद्दीन शाह लड़ाई के मोर्चे पर हार कर घर आता है और अपने भाई शशि कपूर के कबूतरों को उठा-उठा कर पटकने और उड़ाने लगता है. उत्तेजित होकर कह रहा है कि हम अंग्रेजों से इसीलिए हार गये कि हम कबूतरबाज, शतरंजबाज, पतंगबाजी में पड़े थे.'

थोड़ा विचार कीजिये. मनोरंजन के साधन तो हर समाज में होते हैं. क्या उनके कारण कोई हार सकता है? दरअसल इस संवाद के पीछे जो ध्वनित हो रहा है वह 'सांस्कृतिक हार' है. आप देखेंगी कि १८५७ की असफल क्रांति के बाद सुनियोजित ढंग से यह प्रचार किया गया कि हिन्दुस्तान (हिन्दी प्रदेश) की भाषा और संस्कृति पतनशील है. उससे अलग हो जाना ही उत्तम है. यह तथाकथित अभियान सौ साल तक चला और इसने हमें संस्कृतिहीन कर दिया. यही कारण है कि आज हिन्दी प्रदेशों में सांस्कृतिक आन्दोलन की आवश्यकता है. संस्कृति के प्रति उदासीन समाज में किताबों की क्या स्थिति हो सकती है, आप समझ सकती हैं. यह बात निश्चित रूप से लेखक को हर तरह सालती है. लेकिन भविष्य के प्रति मैं आस्थावान हूँ. स्थिति बदल रही है और बदलेगी.

आपकी राय में लेखन में सम्मान या पुरस्कार क्या भूमिका अदा करते हैं?

सम्मान और पुरस्कार यदि ईमानदारी से दिए जायें तो उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है. वे लेखक और पाठक दोनों को उत्साहित करते हैं.

एक विधा के रूप में आत्मकथात्मक उपन्यास को दूसरे उपन्यासों से कैसे अलग बनायेंगे?

मेरे विचार से आत्मकथात्मक होने के कारण कोई उपन्यास अन्य उपन्यासों से यानी गैर कथात्मक उपन्यासों से अच्छा या बुरा नहीं हो सकता. दोनों ही प्रकार के उपन्यासों के लिए कसौटी एक ही होती है.

आजकल विवाहेतर संबंधों का जो दौर चला है, उसके बारे में आप क्या सोचते हैं?

इस मामले में मैं यह मानता हूं कि जो आदमी के मन में आये, जिस बात को वह जस्टिफाई कर सके, साथ ही इस संबंध के लिये दोनों मे ईर्ष्या, डाह ये भाव न हों और दोनों तरफ से सहमति हो तो विवाहेतर संबंधों में कोई बुराई नहीं है. याद रखिये, संबंधों में डिक्टेटरशिप नहीं होती और न चलती है.

आपको ऐसा लगता है कि इस प्रकार के संबंध से परिवार पर कोई फ़र्क पड़ता है?

यदि ये संबंध पारिवारिक कटुता के रूप में हो रहे हैं या इन संबंधों में द्वेष है तो इसका असर परिवार पर पड़ेगा अन्यथा नहीं. संबंधों में कोई जड़ एकाधिकार तो होता नहीं है. संबंध बहुआयामी होते हैं. ये फ्लैक्सिबिलिटी है आपकी कि आप क्या सोचते हैं. मैं यह मानता हूं कि किसी भी तरह के संबंध होते हैं तो उनका एक औचित्य होता है, उनको सहने की शक्ति होती है. मैं पुनः कहता हूं कि संबंधों में डिक्टेटरशिप नहीं होती. अग़र यह डिक्टेटरशिप है तो वह कुछ और माना जायेगा.

आप लेखक न होते को क्या होते?

मैं लेखक न होता तो सफाई कर्मचारी होता या दस्तकार होता. ■

राजकिशोर

राजनीति में रुचि थी, लेकिन पत्रकारिता और साहित्य में आ गये. अब फिर राजनीति में लौटना चाहते हैं, लेकिन परंपरागत राजनीति में नहीं. सोचते हैं कि क्या मार्क्स की राजनीति गांधी की शैली में नहीं की जा सकती. एक व्यापक आंदोलन छेड़ने का पक्का इरादा रखते हैं. उसके लिए साथियों की तलाश है. आजकल इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, नई दिल्ली में वरिष्ठ फ़ेलो हैं. साथ-साथ लेखन और पत्रकारिता भी जारी है. रविवार, परिवर्तन और नवभारत टाइम्स में वरिष्ठ सहायक सम्पादक के तौर पर काम किया. कई चर्चित पुस्तकों के लेखक. ताजा कृति : उपन्यास 'तुम्हारा सुख'.

सम्पर्क : ५३, एक्सप्रेस अपार्टमेंटस, मयूर कुंज, दिल्ली-११००९६ ईमेल : truthonly@gmail.com

नज़रिया

कृष्ण और सुदामा के नए रिश्ते

अमीरों और गरीबों के बच्चे पहले भी साथ-साथ पढ़ते थे. इसका सबसे मशहूर उदाहरण कृष्ण और सुदामा की जोड़ी है. कृष्ण राजकुल के थे और सुदामा एक गरीब ब्राह्मण की संतान. दोनों के प्रति गुरु तथा गुरुकुल के अन्य संवासियों के व्यवहार में कुछ अलग-अलगपन था या नहीं, इसके विवरण उपलब्ध नहीं हैं. लेकिन यह जरूर प्रसिद्ध है कि कृष्ण और सुदामा के बीच गजब की दोस्ती थी. किसी अन्य अमीर और गरीब के बीच ऐसी दोस्ती की कोई नजीर नहीं मिलती. गुरुकुल में शिक्षा पूरी हो जाने के बाद दोनों को एक-दूसरे से जुदा होना ही था. पर एक लंबी अवधि के बाद जब सुदामा अपनी पत्नी द्वारा प्रेरित किए जाने पर कुछ मदद की उम्मीद में कृष्ण के महल में पहुँचे, तो उनका जैसा स्वागत हुआ, वह किसी राजा-महाराजा का क्या हुआ होगा. कृष्ण ने तो तीनों लोकों का राज्य अपने मित्र को दे दिया होता - उसे इसका कोई संकेत दिए बगैर, अगर उनकी पत्नी ने उनका हाथ थाम नहीं लिया होता कि सब कुछ दे ही दोगे, तो हम क्या खाए-पिएँगे. सच है, असली मित्रता वहीं होती है, जहाँ कुछ माँगने की जरूरत ही न पड़े.

भारत सरकार की कृपा से एक बार फिर स्कूलों में कक्षा आठ तक कृष्ण और सुदामा एक साथ पढ़ सकेंगे - एक ही स्कूल में, एक ही बेंच पर. 'शिक्षा का अधिकार' के कानून के तहत सरकार ने व्यवस्था की है कि प्रत्येक स्कूल को कम से कम २५ प्रतिशत सीटें गरीब बच्चों के लिए आरक्षित करनी होंगी और फीस लिए बगैर इन्हें पढ़ाना होगा. इस अटपटी व्यवस्था को अब सर्वोच्च न्यायालय की मान्यता मिल गई है. जाहिर है, जिन स्कूलों में कृष्ण परिवारों के बच्चे पढ़ते हैं, उनके संचालकों को यह कैसे सुहा सकता है? लेकिन अब वे मना नहीं कर सकते. बहुत-से स्कूलों में यह व्यवस्था पिछले शैक्षणिक सत्र से चालू है, लेकिन इस नई संयुक्त शिक्षा प्रणाली के मानदंड अब तक नहीं बन पाए हैं. असली चुनौती यही है. सरकारी आदेश का तकनीकी पालन एक चीज है और शिक्षा के इस नए स्वरूप का मानक तंत्र विकसित करना एक बिलकुल अलग चीज. पहले से ही शक क्यों करें, लेकिन कल्पना में तो एक बहुत ही कठिन स्थिति उभरती है.

> पश्चिमी देशों की तरह हमारे यहाँ भी गरीब-अमीर, काले-गोरे, सभी के लिए एक ही तरह का स्कूल तंत्र होता, तो कितना अच्छा होता. सामाजिक विषमता और भेदभाव खत्म करने का इससे बेहतर तरीका कुछ और नहीं हो सकता.

किस्सों के अनुसार पुराने जमाने में जब बालक कृष्ण और बालक सुदामा एक ही आश्रम में रहते और पढ़ते थे, तब समाज में भले ही सामंतवाद और भयावह आर्थिक विषमता मौजूद रहे हो, पर आश्रमों में पूरा समाजवाद हुआ करता था. सभी छात्रों को गुरुवर का एक-जैसा स्नेह तो नहीं ही मिलता रहा होगा, पर जाति, कुल, वर्ग, परिवार आदि के

आधार पर भौतिक सुविधाओं के विभाजन की बात सोची भी नहीं जा सकती होगी. कह सकते हैं, यह गरीबी या सादगी पर आधारित समाजवाद था, जिसमें सिर्फ मन और बुद्धि की विषमताएँ ही हो सकती थीं - भोग या उपभोग की नहीं.

आज वह वातावरण नहीं है. समाज में तरह-तरह की विषमताएँ हैं, जिनका एक प्रमुख आधार पैसा है. स्कूल भी

आश्रम नहीं हैं, न शिक्षक गुरु हैं. स्कूलों की उतनी ही किस्में हैं जितने वर्ग हैं. हर वर्ग के लिए एक अलग स्कूल. लेकिन 'शिक्षा का अधिकार कानून' के तहत एक नया युग शुरू हो गया है. सरकार की योजना में यह शामिल नहीं है कि अमीर बच्चे भी गरीब बच्चों के स्कूलों में दाखिला लें. यह हमारी मिश्रित लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए संभव नहीं है. जो संभव था और लागू कर दिया गया है, वह यह है कि गरीब बच्चों को अमीर बच्चों के साथ पढ़ने दिया जाए. यह भी सरकार चाहती नहीं थी, पर उसकी मजबूरी हो गई. चौदह वर्ष की उम्र तक के बच्चों को मुफ्त शिक्षा पाने का अधिकार हासिल हो गया है. अव सवाल है कि इतने स्कूल कहाँ से ले आए जाएँ. तब अमीर स्कूलों की ओर नजर गई. उन्हें आदेश दिया गया कि पचीस प्रतिशत सीटें गरीब बच्चों को देनी होंगी. इससे इन स्कूलों में उपलब्ध कुल सीटों की संख्या तो नहीं बढ़ जाएगी, पर अमीर बच्चों को सर्वोत्तम शिक्षा देने के लिए नए स्कूल जरूर खोले जाने लगेंगे. वहाँ भी कृष्ण और सुदामा साथ-साथ पढ़ेंगे. इससे नगरों और महानगरों में शिक्षा उद्योग की प्रगति दर बढ़ेगी. निवेश के नए अवसर खुलेंगे.

कक्षा आठ तक के इस मिश्रित शिक्षा तंत्र के सामाजिक परिणाम क्या होंगे, दीर्घकाल में विचार करने की बात यह है. यह तो शत प्रतिशत तय है कि अमीर स्कूलों में गरीब बच्चों के साथ वैसा ही व्यवहार होगा जैसा सरकारी दफ्तरों में एससी, एसटी कर्मचारियों के साथ होता है. चूँकि आरक्षण की व्यवस्था को राजनीतिक और कानूनी समर्थन है, पर सवर्ण और समर्थ वर्ग ने इसे स्वीकार नहीं किया है, इसलिए आरक्षित वर्ग के कर्मचारियों के साथ वह व्यवहार नहीं हो पाता जो आरक्षण के दर्शन के अनुसार वांछित है. यही अमीर स्कूलों में न हो, इसकी प्रमुख जिम्मेदारी इन स्कूलों के शिक्षकों और संचालकों पर है. इनसे प्रार्थना की जानी चाहिए कि ये अपने-अपने स्कूल और अपनी-अपनी कक्षाओं में संवेदनशीलता और सौहार्द्र का वातावरण बनाएँ. संपन्न बच्चों और उनके अभिभावकों के साथ बार-बार बैठक कर उन्हें इन नई व्यवस्था के सकारात्मक पक्षों से अवगत और सचेतन करने का प्रयास करें. इसी तरह, गरीब बच्चों के साथ अलग से बैठक कर उन्हें इसके लिए मानसिक रूप से तैयार करना होगा कि उन्हें किन-किन मुश्किलों का सामना करना पड़ सकता है तथा उन्हें समझ, धैर्य तथा सहनशीलता का परिचय देना पड़ेगा.

क्या यह संभव हो पाएगा? मैं प्रकृति से ही निराशावादी हूँ - खासकर अपने देश को ले कर. इसलिए मुझे डर यह है कि अंततः तो 'केर-बेर को संग' की स्थिति ही बनेगी. ऐसी स्थिति में क्या होता है, इसका बयान करते हुए कवि ने कहा है, ये डोलें मन आपनो उन कर फाटे अंग. पश्चिमी देशों की तरह हमारे यहाँ भी गरीब-अमीर, काले-गोरे, सभी के लिए एक ही तरह का स्कूल तंत्र होता, तो कितना अच्छा होता. सामाजिक विषमता और भेदभाव खत्म करने का इससे बेहतर तरीका कुछ और नहीं हो सकता. अभी तो, मैं इतनी ही कल्पना कर पा रहा हूँ कि जब गरीब बच्चे अमीर बच्चों और उनके शिक्षा तंत्र के सीधे संपर्क में आएँगे, तब उनके मन में विषमता पर आधारित वर्तमान व्यवस्था के प्रति तीखा आक्रोश पैदा होगा. हो सकता है, इससे बदलाव के संघर्ष को एक नया आधार मिले. ऐसा नहीं होता, तो सामाजिक कटुता का बढ़ना निश्चित है.■

बर्टिना बुथेल्लो

प्राकृतिक चिकित्सा और अध्यात्म जैसे विषयों में गहरी रुचि. विशेष रूप से प्रार्थना और उसके प्रभावों पर अनुसंधान कर रही हैं. देश-दुनिया के विभिन्न समाचार पत्रों में प्राकृतिक चिकित्सा, सकारात्मक जीवन और प्रार्थना पर आलेख लिखती हैं.

संपर्क: ई-मेल : divinetouch.in@gmail.com वेब साइट : www.divinetouch.in

खोज-खबर

नेचुरोपैथी : सुलझाए सेहत की पहेली

आज भारत सहित दुनिया के कई देशों में नेचुरोपैथी (प्राकृतिक चिकित्सा) को पसंद करने वालों की तादाद तेजी से बढ़ रही है. खासतौर से पश्चिमी देशों में, जहां अब लोग एलोपैथी के साथ ही आयुर्वेद व एशिया में प्रचलित दूसरी विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों में दिलचस्पी लेने लगे हैं. इनमें अमेरिका, जर्मनी, जापान, ब्रिटेन और रूस को शामिल किया जा सकता है. यहां उन लोगों की एक लंबी फेहरिश्त है जो एलोपैथी के साथ ही पूर्व के देशों की चिकित्सा पद्धतियों पर यकीन करते हैं और नेचुरोपैथी में उनका भरोसा काफी मजबूत हुआ है.

इलाज की विभिन्न पद्धतियों में नेचुरोपैथी को सबसे नई माना जाता है, लेकिन यह जानना दिलचस्प होगा कि यह दुनिया की सबसे पुरानी चिकित्सा पद्धतियों में शामिल है. इसके नियम भारत के आयुर्वेद से काफी समानता रखते हैं. आयुर्वेद वात, पित्त और कफ के त्रिकोण से सेहत का सवाल सुलझाता है, लेकिन नेचुरोपैथी में इसके पैमाने थोड़े अलग हैं. यह आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तत्व के आधार पर सेहत की पहेली हल करती है. आयुर्वेद के साथ ही तिब्बती, चीनी और यूनानी जैसी पुरानी चिकित्सा पद्धतियों के कई सिद्धांत इससे मिलते हैं. यूरोप और दुनिया के दूसरे पश्चिमी देशों से भारत तक सफर करने के लिए इसे लंबा इंतजार करना पड़ा. वास्तव में जर्मनी और कुछ यूरोपीय देशों के प्राकृतिक चिकित्सकों ने इसमें खुद के स्तर पर काफी शोध किए और दुनिया के सामने प्रामाणिक जानकारी पेश की. ज्यादातर इसका प्रचार उन्हीं लोगों द्वारा किया गया जिन्होंने कभी इससे इलाज लिया था. आज भारत में यह शुरुआती दौर में ही मानी जा सकती है क्योंकि दक्षिण के राज्यों के अलावा उत्तर भारत में इसका अधिक प्रसार नहीं हुआ है.

> "नेचुरोपैथी आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तत्व के आधार पर सेहत की पहेली हल करती हैं. आयुर्वेद के साथ ही तिब्बती, चीनी और यूनानी जैसी पुरानी चिकित्सा पद्धतियों के कई सिद्धांत इससे मिलते हैं."

अगर ग्रामीण भारत में स्वास्थ्य की स्थिति पर गौर करें तो स्थिति काफी जटिल लगती है. आमतौर पर वहां लोग कुछ देसी नुस्खों, राशन की दुकान पर बिकने वाली टेबलेट्स और कुछ उन झोलाछाप डॉक्टरों की मेहरबानी के मोहताज हैं जो लगभग हर गांव में बड़ी आसानी से मिल जाते हैं. अक्सर उनकी फीस बहुत ज्यादा नहीं होती और वे कुछ परिचितों को उधार में भी दवाई देते हैं.

गांवों में आबादी का एक बड़ा भाग बहुत कम आय में अपना गुजारा करता है और वह भी मानसून की दया पर अधिक निर्भर करता है. उस परिवार में डायबिटीज, कैंसर या कोई और जटिल रोग घर की खुशियों के समीकरण को बिगाड़ सकता है. यह सिर्फ एक मिसाल नहीं बल्कि कई परिवारों की हकीकत है. आज देश के शहरों में जहां चिकित्सा सुविधाएं बेहद महंगी हो चुकी हैं वहीं गांवों में यह आम आदमी की पहुंच से बाहर की बात है. यह कहना गलत नहीं होगा कि महानगर अस्थमा, कैंसर, पथरी व हृदय रोगों

> विश्व स्वास्थ्य संगठन के आंकड़े बताते हैं कि देश में स्वास्थ्य एक बड़ी चुनौती बन चुका है. व्यस्त जीवन शैली, रोगों की बढ़ती संख्या और दवाओं का बढ़ता खर्च यह साबित करता है मौजूदा दौर में सिर्फ एलोपैथी ही पर्याप्त नहीं है.

के गढ़ बन रहे हैं और गांव भी इनसे खुद को सुरक्षित नहीं रख सके हैं. उन पेशेवरों में ये रोग तेजी से फैल रहे हैं जो शारीरिक मेहनत बहुत कम करते हैं और रोज आठ घंटे या इससे ज्यादा बैठे रहते हैं. विश्व स्वास्थ्य संगठन के आंकड़े बताते हैं कि देश में स्वास्थ्य एक बड़ी चुनौती बन चुका है. व्यस्त जीवन शैली, रोगों की बढ़ती संख्या और दवाओं का बढ़ता खर्च यह साबित करता है मौजूदा दौर में सिर्फ एलोपैथी ही पर्याप्त नहीं है. यहां एलोपैथी के महत्व को नकारा नहीं जा सकता, क्योंकि शोध व अनुसंधान के नजरिए से यह आज भी सबसे आगे है. फिर भी देश में सेहत के हालात 'मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की' जैसे हैं. इसलिए आज एलोपैथी के साथ एक ऐसी चिकित्सा पद्धति की जरूरत है जो कम लागत में भारत के महानगरों से लेकर छोटे गांवों तक को चिकित्सा सुविधा उपलब्ध करवा सके. यहां चीन और जापान का जिक्र करना जरूरी होगा, जिन्होंने हर आधुनिक तकनीकी को अपनाने के बावजूद अपनी परम्परागत चिकित्सा पद्धति को नहीं छोड़ा. उन्होंने तकनीकी और प्राचीन चिकित्सा विज्ञान में तालमेल कायम किया. आज नेचुरोपैथी में भी काफी शोध व अनुसंधान की जरूरत है. ज्यादातर प्राकृतिक चिकित्सालयों में उपचार के तरीके बेहद पुराने हैं और उनमें वर्षों बाद भी कोई महत्वपूर्ण बदलाव नहीं हुआ है. आज एक ऐसी स्वास्थ्य नीति की जरूरत है जो सेहत के इस मुश्किल सवाल को वक्त से पहले सुलझा सके. नेचुरोपैथी की भूमिका इसमें बहुत महत्वपूर्ण हो सकती है.■

मीरा गोयल

बनारस के राय खानदान में जन्म. बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से १९६४ में हिन्दी साहित्य में एमए. माँ गुरुदेव के समय शान्तिनिकेतन में रही और पढ़ीं, जिसकी गहरी छाप आपकी रुचियों में दिखाई देती है. ललित कला में रुचि के परिणामस्वरूप २००६ में 'ललित कला अकादमी' दिल्ली में वाटर कलर पेंटिंग की एकल प्रदर्शनी लगाई. प्रदर्शनी के अनुभव पर आधारित आलेख 'स्वप्न से साक्षात्कार' साहित्य कुंज में प्रकाशित. कविताएँ 'प्रवासिनी के बोल' में शामिल. सम्पर्क : mgoyal@nc.rr.com

लघु कथा

सोने में सुगन्ध

मेरी शशि-सी शीतल सहेली के पुत्र का विवाह सौन्दर्य और नेह की निधि से ओत-प्रोत सुकन्या से मनोहर वातावरण में सम्पन्न हुआ. पति आदित्य नारायण थे तो पत्नी अमोल निधि. परम सुंदर युगल बंदी थी. हर्ष का आलम था.

नव विवाहिता पुत्र-वधु को अपना जाना पहचाना मायका छोड़ कर अनजाने वातावरण में जाना होगा. हमारे एक मित्र ने शायद निधि का उत्साह बढ़ाने और अपने मित्र की प्रसंशा के खयाल से कहा कि तुम्हारी सास एक अद्‌भुत महिला हैं और ये विश्व की सर्वोतम सास हैं.

निधि की भाभी, अपने पति और सास की चहेती, गर्विता राशी छूटते ही बोली 'वाह! न कोई प्रतियोगिता, न तुलनात्मक अध्ययन और सुना दिया निर्णय! जैसे वही सत्य हो. मिले हैं कभी आप मेरी सास से?'

इस घटना की प्रस्तुति में मैंने अपनी ओर से कुछ नहीं जोड़ा है, मात्र फर्क इतना है कि इस वार्तालाप की भाषा हिंगलिश थी.

■

संतोष श्रीवास्तव
१९७८ में पहली कहानी धर्मयुग में प्रकाशित. तब से अब तक १५० कहानियाँ तथा १००० लेख लिख चुकी हैं. प्रकाशित रचनाएँ - कथा सँग्रह : बहके बसँत तुम, बहते ग्लेशियर, यहाँ सपने बिकते हैं, प्रेम सम्बन्धों की कहानियाँ. उपन्यास : मालवगढ़ की मालविका, दबे पाँव प्यार, टेम्स की सरगम, हवा में बँद मुट्ठियाँ. यात्रा संस्मरण : नीले पानियों की शायराना हरारत. ग़ज़ल संग्रह : अन्जामे मोहब्बत. आठ राष्ट्रीय तथा दो अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त. सम्प्रति : जे.जे.टी. विश्व विद्यालय में पी.एच.डी क्वार्डिनेटर.
सम्पर्क : kalamakar.santosh@gmail.com

यात्रा-वृत्तांत

बिथोविन और मोजार्ट की धुनों का गुँजन

आस्ट्रिया कई कारणों से मेरे मन में हलचल मचाए था. विश्व प्रसिद्ध सँगीत की धुनें तैयार करने वाले बिथोविन और मोजार्ट ने यही पर सँगीत में कमाल हासिल किया था. यहीं जर्मन भाषी आस्ट्रियाई लेखक स्टीफन स्वाइग ने बेहतरीन साहित्य रचा था. उनकी पुस्तकों में वर्णित आस्ट्रिया एक ऐसा ख्वाब बनकर मेरी पलकों पर बसा था जिसे हकीकत में देखना मानो एक ख्वाब से दूसरे ख्वाब तक की सैर थी. यहीं आस्ट्रिया का अँतिम बादशाह चार्ल्स और महारानी जीटा जो हेब्सबर्ग खानदान के थे ने राज किया था. यह खानदान सात सौ वर्षों तक शासन करने के लिये प्रसिद्ध था. उन दिनों स्कूलों में काईजर गीत गाये जाते थे.

आस्ट्रिया मेरी यूरोप यात्रा का दूसरा देश था. छह दिनों की स्विटज़रलेंड यात्रा के बाद में अपने सहयोगी मार्गदर्शक अजय और दोस्तों के साथ आस्ट्रिया की राह पर थी. आस्ट्रिया के बार्डर पर हमारे पासपोर्ट की चैकिंग हुई. बहुत फुर्तीले थे पासपोर्ट अधिकारी और उनका समूह. मिनटों में काम निपटाकर उन्होंने हमें मुस्कुराते हुए अलविदा कहा. आस्ट्रिया में १९६४ से १९७६ तक इंसबुक शहर में नेशनल गेम्स आयोजित किये गये थे. इंस नामक नदी के किनारे बसा होने के कारण इस शहर का नाम इंसब्रुक है. यह स्की के लिये प्रसिद्ध है. ३२३८९ स्क्वेयर माइल में बसे आस्ट्रिया की राजधानी वियना है. आबादी ७.६ मिलियन. पूर देश ९ राज्यों में बँटा है. यहाँ की करेंसी यूरो है. मुख्य व्यवसाय टेक्सटाइल और लकड़ी का है. ४० प्रतिशत टैक्स हर चीज़ पर लिया जाता है. जर्मन और अँग्रेज़ी भाषा बोली जाती है. बेहद खूबसूरत जँगलों, पहाड़ों, नदियों के बीच बसे इस देश के कोहरे भरे मौसम और ठँडी हवाओं ने मन मोह लिया.

> *मैं उस साधारण व्यक्ति की झील सी गहरी नीली आंखों की गहराई को नापने में असमर्थ थी. पहली बार अपने लेखक होने पर थोड़ा सा गर्व हुआ. थोड़ा सा यूं लगा जैसे इस भव्य कर्म का एक सिरा मेरी कलम से भी तो जुड़ा है.*

इंसब्रुक में १४वी से १७वी शताब्दी में बने मकान, इमारतें आज भी सुरक्षित हैं, लेकिन हर दूसरा मकान पहले मकान से मेल नहीं खाता. मकानों की ऐसी इन्द्रधनुषी छटा पर मैं मुग्ध हो गई. सड़कें भी १७वीं सदी की बनी हैं. स्लेटी पत्थरों से जड़ी. उन्हें उसी रूप मे आज भी सँवारा जाता है. सामने था ट्रिम्पल आर्च. आर्च के उस तरफ की मूर्तियों के चेहरे खुश नज़र आ रहे थे, इस तरफ के उदास.

'स्पेन के राजा की लड़की के साथ आस्ट्रिया की रानी मारिया थिरिसा के लड़के की शादी तय हुई थी. लेकिन सगाई के दिन ही राजा की मृत्यु हो गई. खुशी और गम का प्रतीक है

ये आर्च.' अजय के बताने पर मैंने कलाकार की कला को नमन किया जिसने भावनाओं का अक्स पत्थरों पर उतार दिया था. उसी के पार्श्व मे सुनहले रँग का महल है जो नोबल फेमिली के टोन एंड टैक्सी ने बनवाया था. गोल्डनेस डाखल गोल्डन रूफ गोथिक शैली मे बना अनन्नास के छिलकों जैसी पीतल और ताँबे की खिड़कियों वाला था. यहाँ १६१८ से १६३२ तक मैकमिलन का राज था. उसी ने गोल्डन रूफ बनवाया था. मैकमिलन बहुत ही रोमेंटिक था और अपनी गोथिक शैली की बनी बाल्कनी में बैठकर विभिन्न खेलो का आनँद लेता था.

उसकी बेहद खूबसूरत दो बीवियाँ थी. दोनों की मूर्तियाँ राजा की मूर्ति के आजू बाजू बनी हैं. किंग लियोपोर्ड की पाँच मूर्तियों वाला १७वीं सदी में बना फव्वारा, सेंट एंस कालम तथा हाईब्लींग हाउस. एक इमारत तो ऐसी दिख रही थी, जैसे ईसाईयों की शादी का केक. उस पर कँस्ट्रक्शन का काम चल रहा था. इंसब्रुक ऐतिहासिक शहर है लेकन जहाँ ये ऐतिहासिक इमारतें हैं वह पुराना शहर कहलाता है. सड़क पार करते ही नया शहर शुरू हो जाता है. जैसे सपनों में सैर करते-करते नई सुबह में आँख खुल जाये. सामने एक चौक था जहाँ सारे राष्ट्रीय कार्यक्रम होते हैं, परेड होती है. वहीं डाल म्यूजियम है.

अब भूख लग आई थी. अजय हमें साहिब रेस्तराँ में ले आये जहाँ हमें डिनर लेना था. रात के आठ बज रहे थे. सूरज यहाँ ९.३० बजे अस्त होता है. शाम नही होती, सूरज के डूबते ही अँधेरा छा जाता है. इस वक्त धूप और बिजली के सँगम में आस्ट्रियाई औरतों के चेहरे सँगमरमरी नजर आ रहे थे. रात हमने होटल 'बान अल्पिना' में बिताई.

सुबह वेकअप काल से नींद खुली. मैं तरोताज़ा होकर बालकनी में आकर खड़ी हो गई. रातभर बारिश हुई थी. सड़कें गीली थीं पर आसमान साफ था. अचानक बाजू वाले चर्च से घँटे बजने लगे. चर्च की इमारत पर सुनहले काँटों वाली बड़ी सी नीली घड़ी लगी थी. ओक का पेड़ हवा में झूम रहा था. दाहिनी ओर बहुत सारी टाइल्स वाले टेरेस वाले घर थे. टेरेस पर पत्थर और कँकरीट क्यों बिछा था यह मेरी समझ में नहीं आया. चर्च से आते ही प्रार्थना के हल्के हल्के स्वर सुन मेरे हाथ जुड़ गये, आँखें मुँद गईं. सामने कान्हा थे. यही प्रार्थना की शक्ति पूरे विश्व को एक सूत्र में जोड़े है. तभी इँटरकाम पर सूचना मिली 'रिसेप्शन में आपसे कोई मिलने आये हैं.' यहाँ मेरी सखी वनिता और उसके पति दिनेश रहते हैं. दोनों पढ़ाई के बाद शादी करके यहाँ आ बसे थे लेकिन हिन्दी के लिये वे अब भी काम कर रहे हैं. दोनों कवि और शायर हैं. अपनी गज़ले खुद कँपोज़ करते हैं. दो साहित्यिक पत्रिकाओं से भी जुड़े हैं. ये जो विदेश में रहने वाले भारतीय परिवारों के बीच एक भावनात्मक रिश्ता जोड़ने का प्रयास करती है और 'पैन हिन्दूइज़्म' को फैलाने का प्रयास करती है. रिसेप्शन में सोफे पर बैठी वनिता चहककर उठी और गले लगकर रो पड़ी. 'कितने दिनों बाद मिल रहे हैं हम.'

'दिनों नहीं बरसों...' इस बीच हेमँत चला गया. मेरे भी आँसू उसका कँधा भिगोने लगे. दिनेश अजय से हमारे कार्यक्रम की जानकारी ले रहे थे. तय हुआ कि म्यूज़ियम देखने के बाद अजय मुझे वनिता के घर ले जायेंगे वहीं डिनर होगा हमारा.

नाश्ता हमने साथ किया. रास्ते में दिनेश और वनीता को उनके घर छोड़ते हुए हम स्वरोस्की क्रिस्टल म्यूजियम देखने रवाना हुए जो वाटन्स में है. चकोस्लोवाकिया से स्वरोस्की नाम का युवक जब ऑस्ट्रिया आया तो उसने यह जान लिया था कि वाटन्स के पहाड़ों में हीरे जैसी चमक, रूप रंग वाला क्रिस्टल मौजूद है. क्रिस्टल को तराश कर आभूषण और सजावट की चीजों का उसने व्यापार शुरू कर दिया और अरबपति बन गया. जब हम म्यूजियम पहुंचे तो पार्किंग प्लेस पर जार्जेट के सिलेटी झंडे फहरा रहे थे, जो दर्जनों की संख्या में थे. उन झंडों पर रोमन लिपी में स्वरोस्की लिखा था. सामने एक हरी घास से भरे पहाड़ पर बड़ा सा हरा मानव सिर बना था. आंख की जगह बड़े-बड़े दो क्रिस्टल लगे थे और मुंह से पानी निकल रहा था जो एक बड़े से जलाशय में गिर रहा था. आसपास जड़ी चार सफेद चट्टानों से भी पानी की पिचकारी बुलेट की तरह छूटती और जलाशय में जाकर गिर जाती.

प्रवेश द्वार पर ही मैंने गौर किया कि पहाड़ की जिस घास को मैं असली समझ रही थी वह प्लास्टिक की थी. अंदर दो मंजिल का म्यूजियम है जिसमें कई प्रकार के आभूषण, जानवर, कमरे की छत पर लगाने वाले झूमर सब क्रिस्टल में बने लाईट में जगर मगर कर रहे थे. मैं पूरा म्यूजियम घूम कर सोफे पर जा बैठी. लोग खरीदी कर रहे थे.

सभी को उनकी मनमानी जगह पर छोड़ हम वनीता के घर आ गए. वनीता का बंगला गुड़ियों की कहानी जैसा रंग बिरंगा सजा धजा और खिले फूलों की क्यारियों से भरे बगीचे वाला था. गेट पर लाल पत्तियों का सदा बहार पेड़ पहरेदार सा खड़ा था. लॉन पर दो सफेद पालतू बिल्लियां उछल कूद मचा रही थीं. वनीता खाना बनाने में जुटी थी और दिनेश सलाद काट रहा था. उसकी दोनों बेटियां टेबिल लगा रही थीं. 'यहां नौकर नहीं होते सब काम हाथ से ही करना पड़ता है. ऑफिस से लौटकर मैं और वनीता दोनों बेटियों से घर का काम निपटाते हुए हिन्दी में ही बात करते हैं.' बताया दिनेश ने. तभी तो यहां पैदा हुई दोनों लड़कियां हिन्दी अच्छी बोल लेती हैं. मेरा अनुभव है कि विदेश में बसा हर प्रवासी भारतीय हम से अधिक भारतीय है. भारतीय भोजन और बेहतरीन गज़लों के बीच शाम गुजार कर हम होटल लौटे. सभी कार से हमें होटल छोड़ने आए. मेरी असुविधा है कि यहां पीने का पानी बाथरूम के वाश बेसिन से ही लेना पड़ता है. 'यहां नलों में आने वाला सारा पानी ही मिनिरल वॉटर है. अब आपको आदत तो डालनी होगी' कहकर दिनेश हंस पड़ा.

चूंकि साल्ज़ बर्ग पहुंचने में छ-सात घंटे तो लग ही जाएंगे. हम अलसुबह ही पैकिंग कर के निकल पड़े. साथ में पैक्ड नाश्ते का बोझ भी था. साल्ज़ बर्ग में ऑस्ट्रियन लेखक स्टीफन स्वाइग ने कई वर्ष गुजारे थे और मेरे लिए यह सोच अद्‌भुत रोमांचकारी थी कि मैं उन जगहों पर चलूंगी जहां कभी स्टीफन चले होंगे. अजय बताते हैं कि साल्ज़ बर्ग सबसे खूबसूरत जगह है. वहां नाटकों के लिए बहुत स्पेस है. कई असरदार नाटक वहां खेले जा चुके हैं. पिछले दिनों कालिदास की शकुन्तला भी मंचित की गई सुनकर मैं रोमांच से भर उठी. आखिर बहुप्रतिक्षित साल्ज़ बर्ग आ ही गया. आल्प्स पर्वत की वादियों में बसा, कोहरे की चादर ओढ़े, भीगा भीगा सा. फूलों की रंगीन बिछावन ने साल्ज़ बर्ग को जैसे अपने में ही समेट लिया हो. अलसाए सौंदर्य और रूमानियत से भरा साल्ज़ बर्ग मेरी आंखों के सामने था. पल भर को मैं चित्रित सी हो गई. 'यह वर्शेटस गार्डन है. यहां हिटलर सबसे छिपकर रहा था.' अजय के कहने पर मैं हंस पड़ी 'तानाशाह हिटलर को भी कहां-कहां छुपना पड़ा. कभी ब्लैक फॉरेस्ट में तो कभी वर्शेटस गार्डन में.'

> *यह मकान एक आर्च बिशप की शिकारगाह था. आल्प्स पर्वत की ही एक ढलवां चोटी पर बना नौ कमरों, गलियारों और विशाल खंभों वाला यह भव्य मकान किसी किले से कम न था.*

ठंडी बयार चल रही थी. हम स्टीफन स्वाइग के मकान के सामने थे. यह मकान एक आर्च बिशप की शिकारगाह था. आल्प्स पर्वत की ही एक ढलवां चोटी पर बना नौ कमरों, गलियारों और विशाल खंभों वाला यह भव्य मकान किसी किले से कम न था. कहते हैं बादशाह फ्रांसिस भी इस मकान में कई दिन रुका था. और उसने यहां के गलियारों का आकार बढ़वाया था. पास ही एक गिरजा घर भी था. सीढ़ियां चढ़कर टेरिस पर पहुंचते ही ऑस्ट्रिया की भव्य प्रकृति आंखों को बहुत ठंडक देती थी. मकान के सामने सुरक्षा अधिकारी खड़ा था. पूछने पर उसने स्टीफन स्वाइग का पूरा इतिहास बयान कर दिया. उसने बड़े गर्व से हमारे साथ फोटो खिंचवायी और बताया कि उसे इस बात पर नाज़ है कि स्टीफन उसके देश के थे. मगर इस बात पर नाराजी है कि उन्होंने आत्महत्या कर ली. 'लेखक को कभी अपने दुख दर्द नहीं देखने चाहिए. वह तो दूसरों के दुख दर्द अपनी कलम से बांटने के लिए पैदा होता है.'

मैं उस साधारण व्यक्ति की झील सी गहरी नीली आंखों की गहराई को नापने में असमर्थ थी. पहली बार अपने लेखक होने पर थोड़ा सा गर्व हुआ. थोड़ा सा यूं लगा जैसे इस भव्य कर्म का एक सिरा मेरी कलम से भी तो जुड़ा है. मैं भी उसका एक हिस्सा हूं.■

मनोज कुमार श्रीवास्तव

विचारशील लेखक के तौर पर ख्याति. गद्य एवं पद्य पर समान अधिकार. कविता के संसार से अलग, उनका गद्य विचार जगत की गहराईयों में जाता है. अपनी परम्परा से निरंतर संवाद करता इनका लेखन आधुनिकता के प्रचलित मुहावरों से भी बाहर जाता है. प्रकाशित कृतियां : कविता संग्रह - 'मेरी डायरी से', 'यादों के संदर्भ', 'पशुपति', 'स्वरांकित' और 'कुरान कविताएँ'. 'शिक्षा के संदर्भ और मूल्य', 'पंचशील वंदेमातरम्', 'यथाकाल' और 'पहाड़ी कोरबा' पर पुस्तकें प्रकाशित. 'सुन्दरकांड' के पुनर्पाठ पर छह खण्ड प्रकाशित. दुर्गा सप्तशती पर 'शक्ति प्रसंग' पुस्तक प्रकाशित. सम्प्रति : १९८७ संवर्ग के भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी.

सम्पर्क : shrivastava_manoj@hotmail.com

शान्तं

सेवी रेजिस ने शान्ति शब्द के भीतर विश्रांति (हार्मनी), संतुलन (बैलेंस), समरसता (equilibrium), सुजीविता (longevity), न्याय, समाधान, अनंतता (टाइमलेसनेस), तृप्ति (contentment), स्वतंत्रता एवं परिपूर्णता (फुलफिलमेंट) जैसे गुणों की अर्थच्छवियां देखी हैं. "शान्त" राम के भीतर इन्हीं सारी विशेषताओं की ओर ध्यान आकर्षित करने वाला शब्द है. यह संज्ञा नहीं, विशेषण है. नाम से क्या होता है. पैसिफिक (प्रशांत महासागर) में क्या तूफान नहीं आते? इस्लामाबाद (जिसका हिन्दी अनुवाद शान्तिनगर होगा) क्या आतंक का कारख़ाना नहीं है? नाम की जगह विशेषण के रूप में इस प्रथम शब्द को देखें. तुलसी की प्रणति जिस राम के प्रति है वे सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं. वाल्मीकि ने भी राम के चरित्र की इस विशेषता का उल्लेख किया था : सतु नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं च भाषते/ उच्यमानोऽपि परषं नोत्तरं प्रतिपद्यते..

अर्थात् वे (श्री रामचन्द्र जी) सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं, कोमल वचन बोलते हैं, कठोर बोलने पर भी वे प्रत्युत्तर में कठोर वचन नहीं कहते. भगवान की यह विशेषता नारद, भृगु और परशुराम के प्रसंगों में भी प्रत्यक्ष होती है. श्री राम की यह शान्ति उनके पूरे जीवन का परिचय है जिसे निराला ने राम की शक्ति पूजा में भंग किया. धिक् जीवन जो पाता ही आया विरोध/धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध. या 'सरिता' पत्रिका में आज से कई दशकों पूर्व राकेश नाथ ने

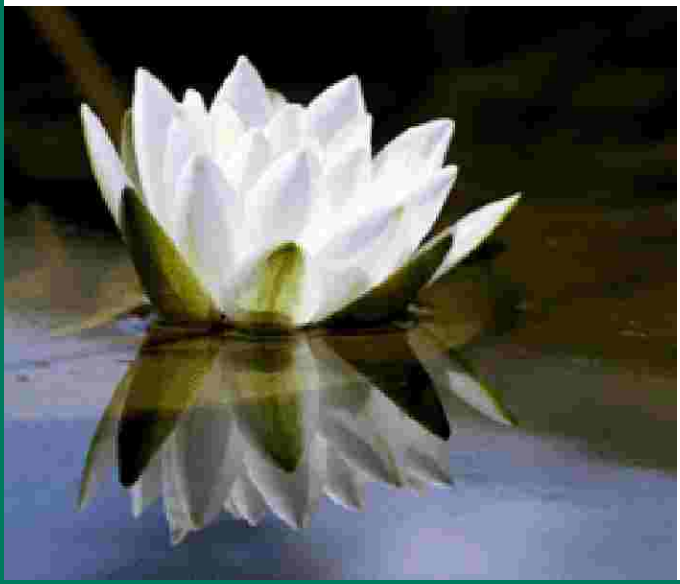

'राम का अन्तर्द्वन्द्व' नामक कविता में भी उनका द्वन्द्व बताया था. नई कविता इस मायने में तुलसी की अपेक्षा वाल्मीकि के अधिक नज़दीक है कि उसमें राम के भीतर की मानवीय उथल-पुथल और हलचल बताई है, राम को ईश्वरी रूप से शान्त न बताकर मानवीय अस्तित्व के अन्तर्विरोधों और जटिलताओं के दिलचस्प वृत्त तैयार किए गए हैं. लेकिन 'शान्तं' राम के चरित्र का एक पारिभाषिक गुण है तो सही. राज सुनाइ दीन्ह वनवासू/सुनि मन भयेउ न हरष हरासू. गीता के सुखे-दुखे समत्वा का राम आदर्श उदाहरण हैं. रातो-रात उनके भाग्य में परिवर्तन होता है लेकिन राम अपनी ग्रेस

> *राम की शान्ति विष्णु की शान्ति से अलग है. वे एक अवतार हैं जो पृथ्वी के इस 'तुमुल कोलाहल कलह' में उतरे हैं. वे एकान्त में नहीं हैं और वानप्रस्थ या संन्यास में भी नहीं.*

नहीं खोते. वाल्मीकि ने भी कहा प्रसन्नतां या न गताभिषेकस्तथा न मम्ले वनवासदु:खत:/मुखाम्बुज श्री रघुनन्दनस्य. राज्याभिषेक से प्रसन्नता नहीं हुई, वनवास से दु:ख नहीं हुआ. क्या राम पाषाण हैं? तो फिर बार-बार उनकी आँखों में आँसू क्यों आ जाते हैं? सीता से वियोग पर वे किस तरह आत्मनियंत्रण खोकर पशुओं, पक्षियों, तरुओं से पूछते रहे थे? राम की शान्ति पाषाण की शान्ति नहीं है, वह प्रचेतन की शान्ति है. विष्णु के बारे में श्रीमद्भागवत में यही कहा गया था : न्यस्येदमात्मनि जगद्विलयाम्बुमध्ये/शेषेत्मना निजसुखानुभवो निरीह:/योगेनमीलितदृगात्मनिपीतनिद:/ स्तुर्ये स्थितो न तु तमो न गुणाश्च युङ्क्षे.. कि हे प्रभो! आप इस निखिल प्रपंच को अपने में समेटकर आत्मसुख का अनुभव करते हुए निरीह होकर प्रलयकालीन जल में शयन करते हैं,

उस समय योग द्वारा बाह्य दृष्टि मूँदकर और आत्मस्वरूप के प्रकाश से निद्रा को जीतकर आप तुरीयपद में स्थित रहते हैं. न तो तमोयुक्त ही होते हैं और न विषयों के भोक्ता ही. उस परमचेतन की शान्ति का यही स्तर है. हालाँकि आगे हम राम और विष्णु की शान्ति पर पृथक पृथक चर्चा करेंगे. रामरक्षास्तोत्र में भी उन्हें 'शान्तमूर्ति' कहा गया है. अध्यात्म रामायण में ब्रह्मा जी श्री राम की जो स्तुति करते हैं उसमें भी वे उन्हें हेयाहेयद्वन्द्वविहीन कहते हैं. शान्तचेतस् श्री राम ऐसे लगते हैं मानो वे शान्त रस का ही रूपाकार हों. बैठे सोह

> *बौद्धों में शान्ति का अर्थ सहन करने की ताक़त और धैर्य से भी लगाया जाता है. थेरावद और महायान बौद्धों में शान्ति पूर्णता प्राप्त करने के लिए ज़रूरी पारमिताओं में से एक है.*

कामरिपु कैसे/धरे सरीरु सांतरसु जैसे. राम के लिए शान्ति एक लक्ष्य नहीं है जिसे किसी दिन उपलब्ध या उत्तीर्ण करना है, वह तो उनके चरित्र का एक पारिभाषित अनुतत्व है. वे शान्ति के लिए रास्ता नहीं बनाते, उनका रास्ता ही शान्ति का रास्ता है.

शान्त के साथ शाश्वतं को साथ-साथ पढ़ने से कहीं राम की उस विशेषता का भी पता लगता है जो स्थायी शान्ति में रत है. यह आज की तरह २१ सितम्बर के एक दिन अंतर्राष्ट्रीय शान्ति दिवस मनाकर सम्पन्न हो जाने वाली विशेषता नहीं है. यह दसवीं शती के अंत से तेरहवीं शती के बीच चर्च द्वारा सामंती राज्यों की हिंसा में किए गए उस हस्तक्षेप जैसा भी नहीं है जिसे 'ईश्वरीय युद्धविराम' (Treuge Dei : Truce of God) कहा जाता है और जिसके तहत रविवारों और पवित्र दिवसों और बाद में शुक्रवारों को लड़ाई पर प्रतिबंध लगा दिया गया था. एडवर्ड गिब्बन ने इस तरह के युद्धविराम की मूल प्रेरणा प्राचीन पैगन जर्मन जनजातियों में मानी है जब साल के कुछ विशेष दिन पृथ्वी की देवी की यात्रा उस अंचल में होना मानी जाती थी. तब झगड़े लड़ाई सब बंद हो जाते थे. हथियार डाल दिए जाते थे. शान्ति और समरसता बहाल हो जाती थी. लेकिन युद्ध या लड़ाई झगड़े की क्षणिक अनुपस्थिति 'शान्तं शाश्वतं' होना नहीं है बल्कि राम तो युद्ध की तैयारी कर रहे हैं और शान्तचित्त से यह तैयारी कर रहे हैं. वे परमानेंट इंटरनेशनल पीस ब्यूरो जैसी कोई संस्था स्थापित नहीं कर रहे. वे तो सुन्दरकांड में ऐसे क़दम उठा रहे हैं जो युद्ध-पूर्व रणनीति बनाने के लिए ज़रूरी हैं. ऐसे में वे शान्ति के उस जड़ अर्थ को कहीं भी नहीं स्पर्श करते.

राम की शान्ति विष्णु की शान्ति से अलग है. वे एक अवतार हैं जो पृथ्वी के इस 'तुमुल कोलाहल कलह' में उतरे हैं. वे एकान्त में नहीं हैं और वानप्रस्थ या संन्यास में भी नहीं. उनकी ज़िन्दगी के वाकयात तो मुझे बरबस टामस लावेल वेडोज़ की उस पंक्ति की याद दिलाते हैं कि 'जीवन अकेला तीर्थयात्री है जो निहत्था हज़ारों सैनिकों से लड़ रहा है' (Life's a single pilgrim fighting unarmed amongst a thousand soldiers.) उन्हें वैकुण्ठ की शान्ति के बीच होने की सुविधा नहीं है. उन्हें तो राक्षसों की धींगामुश्ती, खुराफ़ातों और उत्पातों के बीच अपना स्थैर्य, प्रशमता और मनस्तोष को बनाए रखना है, ज़िन्दगी उनकी सारी परीक्षाएँ ले रही है, और अवतार होने पर भी उनके साथ कोई रियायत नहीं कर रही. उन्हें वनवास भी मिला है, और उनकी शक्तिभूता पत्नी का भी अपहरण हुआ है. किसी वीतकाम, योगारूढ़ बैरागी की निवृत्ति उन्हें उपलब्ध नहीं है. सबसे ज़बर्दस्त प्रोवोकेशन जो मिल सकते थे, उन्हें मिले हैं. लेकिन वे तैश में नहीं हैं, न बौखलाहट में. चिड़चिड़ाना और जलना-भुनना उनमें नहीं देखा गया. उनमें यह 'शम' कहाँ से आया? शमरतेऽमरतेजसि पार्थिवे. (र.९.४) शान्तं शब्द की व्युत्पत्ति में यह शम शब्द ही मूल है. तुलसी को राम का यही रूप क्यों भाता है? इस विशेषण के प्रथमोल्लेख के क्या मायने हैं?

तुलसी राम के रूप में विष्णु को भजते हैं लेकिन देखते उनमें शंकर के गुणों को हैं. शंकर अथवा शम्भु (शम्मङ्गलं

भवति अस्मात्) में भी 'शम' की प्रधानता है. लेकिन शंकर निवृत्तात्मा हैं, और राम पृथ्वी के पचड़ों में फंस गए हैं. इसके बावजूद वे शम का निर्वाह करते हैं. इसीलिए तुलसी उनके इस वैशिष्ट्य को प्रथमतः रेखांकित करते हैं. इसमें उनका समन्वयवाद भी है और कथा प्रसंग की आवश्यकता भी. आख़िरकार सुन्दरकांड में हनुमान को अपने स्वामी के जिस रूप से प्रेरणा लेनी है उसमें 'शान्तं' का यह रूप सबसे महत्वपूर्ण होगा. हनुमान को शत्रु देश में जाना है. विपरीत परिस्थितियों में. सिंहिका, लंका, अक्षकुमार, मेघनाद, रावण. अलग तरह की प्रतिरोधी ताक़तें. हनूष वि. हनुमान. उन्हें अपने अनुद्वेग को बनाए रखना है. अशोक वाटिका और लंका में उन्हें अफ़रा-तफ़री और बदहवासी फैलानी है. दुश्मन के कैंप में घबराहट और धुकधुकी पैदा करनी है तो यह काम अपने 'शान्त' स्वामी का ध्यान करके ही हो सकेगा. इतने दिनों तक उनके प्रभु ने अपने क्षोभ का पता ही नहीं चलने दिया. वे जितमन्यु रहे तो क्या उनके परमभक्त हनुमान उस शान्ति, सौम्यता का कोई काव्यात्मक प्रत्युत्तर और प्रतिकार नहीं प्रस्तुत करेंगे? राम की शान्ति ही उनकी प्रेरणा बनती है कि वे ऐसी शान्ति की ही शपथ लें. यदि वे इसे लंका के विक्षोभ और विकलता में कायांतरित नहीं करते तो लोग इस शान्ति के अर्थ ग़लत ही लगाएंगे. ये तमचर, ये असुर, जिनकी चौधराहट ने विश्वशान्ति भंग कर रखी है जब तक ये सकपकाएंगे नहीं, तब तक उस स्थिरात्मा और धृतिमान के होने का आदर नहीं कर पाएंगे. जब तक इनमें खौफ़जदगी की झुरझुराहट नहीं फैलती, जब तक इनमें त्रास का विस्तार नहीं होता तब तक वे उस अक्षोभ्य और समचित्त राम के मन की गहराई नहीं जान पाएंगे. उस जितमन्यु राम के 'शान्तं' रूप के प्रति इस वृषमन्यु हनुमान का आदर ही है जो लंका में अशान्ति फैलाने और दनुजों को दहलाने में परिणत होता है. यदि शान्ति का समादर नहीं होगा तो लंका दहन के सिवाय रास्ता क्या है?

> *ईश्वर हमारे अपचारों को देखता है और सहता भी है लेकिन उसकी शान्ति उसकी उदासीनता नहीं है बल्कि उसकी लाठी भी उतनी ही बेआवाज़ होती है. राम की शान्ति राम की कायरता नहीं बल्कि उनके मैनहुड का इम्तहान है, सर्वोच्च इम्तहान.*

राम की शान्ति और हनुमान की क्रांति एक ही तने की दो शाखाएं हैं. राम का शम निष्क्रिय नहीं है, वे शम से ही शमन की ओर बढ़ते हैं. राक्षसी आतंक के शमन की ओर.

ईश्वर हमारे अपचारों को देखता है और सहता भी है लेकिन उसकी शान्ति उसकी उदासीनता नहीं है बल्कि उसकी लाठी भी उतनी ही बेआवाज़ होती है. राम की शान्ति राम की कायरता नहीं बल्कि उनके मैनहुड का इम्तहान है, सर्वोच्च इम्तहान. बौद्धों में शान्ति का अर्थ सहन करने की ताक़त और धैर्य से भी लगाया जाता है. थेरावद और महायान बौद्धों में शान्ति पूर्णता प्राप्त करने के लिए ज़रूरी पारमिताओं में से एक हैं. राम की शान्ति राम का स्वभाव ही नहीं है, वह तमाम विपरीतताओं को झेलते हुए होने पर भी उनकी ओर से विश्व को दिया हुआ एक उपहार है. हमने ऊपर यह पूछा था कि राम में यह शम कहाँ से आया है. राम के अनतिरेक और आत्मनिग्रह को हम एक ऐसे व्यक्ति की ही पहचान मानेंगे जिसे अपने होने के प्रयोजन का पता है. वह हम जैसा नहीं है कि जिसके बारे में अकबर इलाहाबादी ने कहा : 'दो मुरादें जो मिलीं चार तमन्नाएं कीं. हमने ख़ुद क़ल्ब में आराम को रहने न दिया.' वह अलग है. उसे मालूम है कि वह इस पृथ्वी पर अयोध्या में राज करने के लिए नहीं आया. इसलिए राज्यारोहण न हो पाना दंड नहीं, उसके जीवन-प्रयोजन की सिद्धि की ही ओर एक क़दम है. यह नियतेंद्रिय, जिसने एक पल में सत्ता को ठोकर मार दी, क्या स्वर्ण-मृग के पीछे भागेगा? लेकिन दानवी दुष्टता को अवकाश मिला तो अपने समय के सबसे बड़े सत्ता-उन्माद को एक वनवासी की चुनौती की पृष्ठभूमि तैयार हुई. इसलिए इस 'शान्त' की विराट बुद्धि ही उसके शम का मूल है. अपने प्रति हुए प्रकट अन्याय भी अपने जीवनार्थ को सिद्ध करने की गुप्त ईश्वरीय योजना हैं, इतनी निष्ठा जिसमें हो, इतनी अंतर्दृष्टि जिसमें हो केवल वही शान्त रह सकता है. राम वो हैं जिन्होंने ईश्वर के, विष्णु के

प्रयोजन को अपना मान लिया है. यह कोई निराश निवृत्ति नहीं है कि 'दाई विल बी डन' (तेरी इच्छा पूरी हो) बल्कि यह मनुष्य का ईश्वर से पृथक कोई प्रयोजन नहीं होना है. यह ऐसा नहीं है कि मैन प्रपोज़ेस, गॉड डिस्पोज़ेस. यह तो ईश्वर के रंग में घुल जाना है. जब राम ने वहां द्वैत ख़त्म कर दिया, जब वहां मेरा-तेरा नहीं रह गया तो उनमें शान्ति प्रतिफलित हुई ही. श्रीमद् भगवत गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा : भोक्तरां यज्ञतपसां सर्वलोक महेश्वरम्. सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वां मां शान्तिमृच्छति. अर्थात् मैं सब यज्ञ तपों का भोक्ता हूँ, सम्पूर्ण लोकों का महान ईश्वर हूँ और वही मैं समस्त भूत प्राणियों का स्वार्थरहित दयालु प्रेमी हूँ, ऐसा मुझे जान लेने पर मनुष्य शान्ति को प्राप्त होता है.

'शान्तं' शब्द को मध्यकालीन मारकाट के प्रकाश में भी देखना चाहिए. शान्ति जिस तरह से आज हमारे लिए सबसे बड़ा मूल्य है, उसी तरह से तत्कालीन तुलसी के लिए भी वह एक सर्वप्रथम और शाश्वत मूल्य था. मध्यकाल में मंगोलों ने ४ करोड़ लोग मारे थे. विल ड्यूरां ने लिखा है कि भारत की मुस्लिम विजय इतिहास की सम्भवतः सबसे रक्तिम कथा है. कभी क्रूसेड में यूरोप में लोग थोक के भाव में मारे जाते थे तो कभी 'डायनों का शिकार' यूरोप में होता था और एम.डी. एलेथिया (द रेशनलिस्ट मैनुअल) के अनुसार ९ लाख डायनें प्रेतविद्या क्राफ्ट के कारण जला दी गई थीं. इंग्लैंड में प्रसिद्ध 'वार ऑफ़ द रोजेस' (गुलाबों का युद्ध) चल रहा था. ड्रेकुला नामक कुख्यात सामंत इसी समय हुआ जिसने एक लाख लोगों को यंत्रणा दी या उनकी हत्या की थी. हंगरी में किसान युद्ध में ७०,००० लोग मारे गए थे और जर्मनी में एक लाख किसान इन युद्धों में मारे गए थे. जर्मनी में इसी दौर के आसपास नाइट्स वार भी चल रहा था जिसमें दो लाख पचास हज़ार जर्मन मारे गए थे. रूस में इसी शती में ईवान द टेरिबल हुआ था जिसने नोवोगार्ड के नरसंहार में ६०,००० लोग मार डाले थे. वाल्डेनशियन की समकालीन प्रताड़ना में नौ लाख लोगों ने जान दी थी. फ्रांस में संत बर्थोलोम्यू के नरसंहार में ७०,००० से एक लाख लोग मरे थे. तीस वर्षीय युद्ध में ३० से ४० लाख लोग मरे थे. मुहम्मदशाह ने विजय नगर में ५ लाख हिन्दुओं का नरसंहार किया था. तैमूर लंग ने दिल्ली में एक लाख लोग काट डाले थे. अकबर, जिसको अमर्त्यसेन अपनी पुस्तक 'द आर्गुमेंटेटिव इंडियन' में अमन का फ़रिश्ता बनाकर पेश करते हैं, ने चित्तौड़ में ३०,००० लोगों को मारा था. इसलिए यह तो ठीक है कि शान्तं राम का इंटर्नल स्वरूप है, लेकिन इस शब्द को मिली प्राथमिकता के पीछे तुलसी के कवि का युग चरित्र भी देखा जाना चाहिए. कवि श्रीकृष्ण सरल ने 'तुलसी मानस' में इस युग का चित्र खींचते हुए कहा : यह पुण्य भूमि आक्रान्त हो रही अनुदिन/धन-धान्य लुटेरे

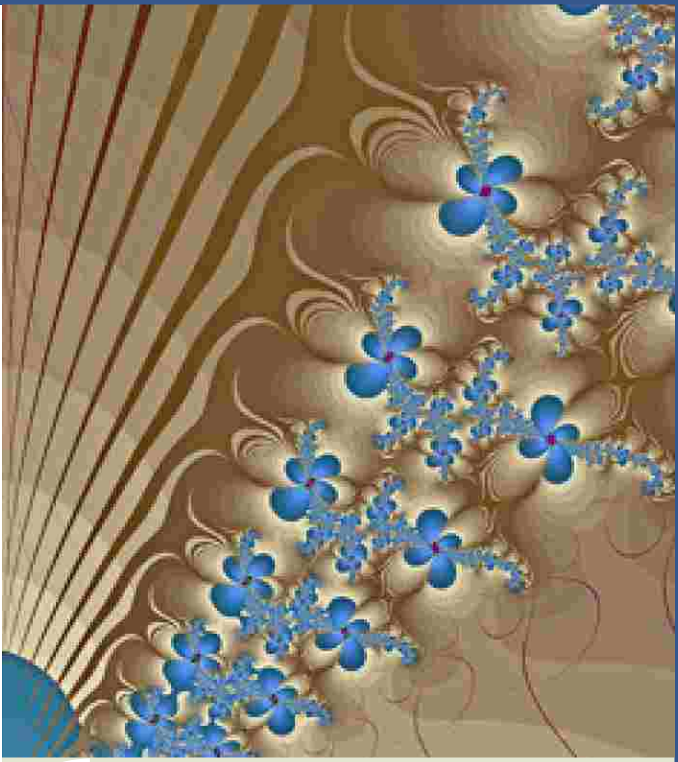

> लोगों के भीतर तरह-तरह की शक्तियां बिखरी पड़ी हैं. शक्ति के विद्युत्कण निरुपाय हैं और विकल भी. राम उनका समन्वय करते हैं, उन्हें एकसूत्र में बाँधते हैं ताकि मानवता विजयिनी हो.

लूट-लूट ले जाते/करते विनाशलीलाएं इस धरती पर/वे भारतीय संस्कृति को रहे मिटाते.

ऐसी स्थिति में तुलसी के लिए शान्ति निश्चित ही एक प्राथमिक मूल्य रही होगी. यानी यों तो शान्ति मनुष्य मन की पहली चाह रही है और यजुर्वेद (३६/१७) में ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः शान्तिः सा माँ शान्ति रेधि का पूरा मंत्र शान्ति की इस इटर्नल चाह को बताता है लेकिन मध्यकालीन हिंसा और खून-खच्चर के बीच प्रभु का 'शान्त' स्वरूप बहुत आश्वस्तिकारी तो था ही, बहुत ज़रूरी भी था.

शान्त' को सबसे प्रथम उल्लिखित करने वाला यह कवि आज के उस दौर में और भी महत्वपूर्ण हो जाता है जहां जैविक युद्ध हैं और कोबाल्ट बम भी. ३० जून १९९७ को प्रकाशित राबर्ट जैक्सन की रपट के अनुसार १९४५ से अभी तक सिर्फ़ २६ दिन ही बिना युद्ध के बीते हैं जबकि कहने को

गुएर्निका की बमबारी से शुरू हुए थोक विनाश के हथियार हिरोशिमा, नागासाकी जैसे पड़ाव पार कर चुके हैं. गुएर्निका (स्पेन) की बमबारी में ७० प्रतिशत शहर नष्ट हो गए थे.

द्वितीय विश्व युद्ध सभी युद्धों को खत्म करने के लिए लड़ा गया युद्ध था. यह वह दुनिया है जहां आण्विक शक्ति-संपन्न देश हैं और जहां आण्विक बमों की हिस्सेदारी के समझौते हैं. संयुक्त राज्य अमेरिका ने १८० बी-६१ नाभिकीय बम बेल्जियम, जर्मनी, इटली, नीदरलैंड्स और टर्की को नाटो नाभिकीय बम साझेदारी अनुबंध के तहत दे रखे हैं और इसे नाभिकीय अप्रसार संधि के प्रथम और द्वितीय अनुच्छेद को भंग करना नहीं माना जाता. यहां विश्व शान्ति को ख़तरा अणु शक्ति-संपन्न राष्ट्रों से ही नहीं है, बल्कि डॉ. अब्दुल क़ादिर ख़ान जैसे पाकिस्तानी वैज्ञानिकों से प्राविधिकी कमाए हुए अज्ञात आतंकवादी व्यक्तियों या समूहों से भी है. गुएर्निका की बमबारी से शुरू हुए थोक विनाश के हथियार हिरोशिमा, नागासाकी जैसे पड़ाव पार कर चुके हैं. गुएर्निका (स्पेन) की बमबारी में ७० प्रतिशत शहर नष्ट हो गए थे. २००२ ई. में 'अमेरिकन डायलेक्ट सोसायटी' ने थोक विनाश के अस्त्र (वेपन्स ऑफ़ मॉस डिस्ट्रक्शन) शब्द को 'वर्ष के शब्द' के रूप में चुना था. कई फ़िल्में अशान्ति के इस भीषण दुःस्वप्न को चित्रित करती हैं : 'द डे द अर्थ स्टुड स्टिल' (१९५१), डॉ. स्ट्रेंजलव, हाउ आई लर्न्ड टू स्टॉप वरिंग एंड लव द बांब' (१९६४), फेल-सेफ (१९६४), ट्वल्व मंकीज (१९९५). अब जो रेडियोलॉजिकल अस्त्र बन रहे हैं वे तो नाभिकीय बमों की तरह दुर्लभ धातुएं भी नहीं चाहते. वे तो कैसियम-१३७ या कोबाल्ट-६० जैसी साधारण धातुओं से बन जाते हैं. कोबाल्ट बम अत्यंत विकिरणधर्मी भी है और इसकी गामा रश्मियाँ, स्जिलाई के अनुसार, समूची पृथ्वी से जीवन ख़त्म कर सकती हैं. नेविल शूट का उपन्यास 'ऑन द बीच' कोबाल्ट बम के इर्द-गिर्द ही अपनी रोमांच कथा बुनता है. रेलगन, क्वाइलगन, आयन कैनन, प्लाज़्मा कैनन जैसे चुंबकीय हथियार भी इसी दौर की उपज हैं. आज ७० रसायनशास्त्रीय अस्त्र हैं, जिनमें से अनेक से कोई गैस मास्क भी रक्षा नहीं कर सकता. प्रथम विश्व युद्द में क्लोरीन, फास्जीन और मस्टर्ड गैस का उपयोग हुआ था. १९५२ में अमेरिकी सेना ने ज़हरीले रीसिन को तैयार करने की विधि पेटेंट कराई थी, १९५८ में ब्रिटिश सरकार ने अमेरिका को व्ही.एक्स तकनीक दी. १९९४ में अमेरिकी सीनेट रपट के मुताबिक लगभग ६०००० अमेरिकी सैनिकों का इस्तेमाल मस्टर्ड गैस और लेवीसाइट के परीक्षण के लिए १९४० में किया गया और १९५० से ७० के बीच ऑपरेशन व्हाइटकोट चला. अब तो बायो-टेररिज़्म के चर्चे हैं. बायरन की कविता याद आती है :-

Mark where his carnage and his conquests cease !
He makes a solitude and calls it- peace. यह शान्ति श्मशान की है. हत्याकांडों और विजयों के ख़त्म होने के बाद बचा हुआ एकाकीपन. बड़े-बड़े नरसंहारों की शती. शान्ति ऐसे में ईश्वर की सर्वप्रथम वर्ण्य विशेषता होगी ही जबकि अशान्ति मनुष्य की सर्वप्रथम वर्ण्य विशेषता हो चुकी हो. यह भी ध्यान देने योग्य है कि कहा तो यह जाता है कि शासकों को शान्ति का प्रयोग छोड़कर दंड-प्रयोग की प्रणाली को ही अपनाना चाहिए : "साम्नः प्रयोगमिहं निष्फलमेव बुद्धवा दण्डप्रयोग विधिरेव सदा प्रयोज्यः', लेकिन राम तो 'शान्त' के रूप में प्रथम परिचय के पात्र बनाए जा रहे हैं. जिसे इस श्लोक के अन्त में भूपाल चूड़ामणि कहा जाएगा, उसे इस श्लोक के प्रारंभ में 'शान्त' कहा जा रहा है. वे आधुनिक समय के उन युद्धखोर शासकों से भिन्न हैं जो 'जिंगो आल द वे' की घंटियाँ (बैल्स) बजाते हुए दुनियाभर में आतंक फैला रहे हैं. प्राचीन रोम में 'पीस' शब्द का व्युत्पित्तमूलक अर्थ 'एब्सेन्शिया बैली' था- 'युद्ध का अभाव', - लेकिन राम के साथ शान्ति इस नकारात्मक अर्थ में सम्पन्न नहीं होती है. यह वह शान्ति है जो न्याय की उपस्थिति से आती है, न कि तनाव की ग़ैरमौजूदगी से. अफ्रीका के 'ग्रेट लेक्स रीज़न' (विशाल झील प्रांतर) में शान्ति के लिए 'किन्ट्रोकी' शब्द प्रचलित है जिसका अर्थ है आदमियों, शेष प्रकृत दुनिया व खगोल के बीच एक सुरम्य संतुलन. सिर्फ़ युद्ध के न होने को शान्ति मानें तो स्वीडन में १८१४ के बाद से कोई युद्ध नहीं हुआ. पेंसिलवेनिया में १६८२ से १७५४ तक ७२ वर्षों तक कोई युद्ध नहीं हुआ, लेकिन वहाँ दासता भी थी और वर्ग संघर्ष भी. कुछ लोग ग़ैर-सैन्यवादी होने को शान्त होने का प्रमाण मानते हैं. आज भी एंडोरा, कोस्टा रिका, जेमिनिका, ग्रेनेडा, हैती, आइसलैंड, किरिबाती, मार्शल द्वीप समूह, मारीशस, माइक्रोनेशिया, मोनाको, नौरू, पलौ, पनामा, सेंट किट्स, सेंट ल्यूशिया, सेंट विंसेट समोआ, लीख्टेन्स्टीन, सान मरीनो, सोलोमन द्वीप, ट्यूवालू, वैटिकन सिटी जैसे २३ देश हैं जिनके पास कोई राजकीय सेना नहीं है. वनवासी राम के पास भी स्वयं की कोई सेना नहीं थी. उन्होंने तो वनवासियों को संगठित किया. आज संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे युद्धखोर देश हैं जो विश्व का आधे से ज्यादा सैन्य व्यय स्वयं करते हैं. राम की सेना वस्तुतः राम का लोक-संग्रह है. लोगों के भीतर तरह-तरह की शक्तियां बिखरी पड़ी हैं. शक्ति के विद्युत्कण निरुपाय हैं और विकल भी. राम उनका समन्वय करते हैं, उन्हें एकसूत्र में बाँधते हैं ताकि मानवता विजयिनी हो.■

प्रभुदयाल मिश्र

ग्राम बर्माडांग, जिला टीकमगढ़ मध्यप्रदेश में जन्म. सागर विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. महर्षि महेश योगी के साथ आध्यात्मिक पुनरुत्थान आन्दोलन के सिलसिले में संपूर्ण भारत यात्रा. मध्य एशिया के तजाकिस्तान और उजवेगिस्तान गणराज्यों में गीता और भारतीय योग पर व्याख्यान. विभिन्न आध्यात्मिक एवं साहित्यिक संस्थाओं से सम्बद्ध. प्रकाशित कृतियां : सौंदर्यलहरी काव्यानुवाद, सबके लिए गीता, उत्तर पथ, मैत्रेयी, वेद की कविता (वैदिक सूक्तों का काव्यान्तर), वेद की कहानियाँ, तंत्र दृष्टि और सौन्दर्य सृष्टि, योग के सात आध्यात्मिक नियम, ईश्वर का घर है संसार. सम्मान : मध्यप्रदेश संस्कृत अकादेमी द्वारा 'व्यास सम्मान', मध्यप्रदेश लेखक संघ द्वारा 'पुष्कर सम्मान', पेंग्वुन पब्लिशिंग हाउस द्वारा 'भारत एक्सीलेन्सी एवार्ड', वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद् द्वारा 'महाकवि केशव सम्मान'. सम्प्रति : अध्यक्ष, महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम्, भोपाल.

सम्पर्क : ३५, ईडन गार्डन, राजा भोज मार्ग, भोपाल म.प्र. ४६२०१६ ईमेलः prabhu.d.mishra@gmail.com, www.vishwatm.com

वेद की कविता

माता भूमि और पृथिवी-पुत्र

(काव्यान्तर पृथिवी सूक्त)

(अथर्ववेद- कांड १२, सूक्त १, ऋषि-अथर्वा और देवता पृथिवी)

यस्ते गन्धः पुष्करामाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे
अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभि
कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन।२४।
गंध, पृथिवी जो तुम्हारी
कमल में है
गंध, जिसका सुर सभी संलेप करते
उषा-रवि पाणिग्रहण पर
वह करे सुरभित हमें भी
द्वेषरत न कहीं कोई
कभी हो हमसे.

यस्ते गंधः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः
यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु
कन्यायां वर्चो यद् भूमे तेनास्मॉं
अपि सं सृज मा नो द्विक्षत कश्चन।२५।
गंध जो पृथिवि, तुम्हारी पुरुष में है
और नारी में
परस्पर कांति, शोभा
अश्व, मृग, हाथी
सुकन्या आदि का वर्चस्
वह करे सुरभित हमें भी
द्वेषरत न कहीं कोई
कभी हो हमसे.

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ।२६।
भूमि, जो पत्थर, शिला
रजकण सनी
भूमि जो संधारती धृतिवान मानव
भूमि जो है स्वर्ण का आगार
उसको यह नमन मेरा.

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि।२७।
वृक्ष, द्रुम, वन लता जिस पर
सदा संस्थित, अडिग, दृढ़ हैं
उस धरा गुणखान की हम वंदना करते.

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम्।२८।
भूमि पर चलते
कभी बैठे, खड़े
बाम, दक्षिण चरण से
दिग्गमन करते
प्रार्थना यह हमारी, हे भूमि
हमसे दुखी न हो
कोई कभी.

■

(क्रमशः)

डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता
सम्पर्क : om@ramacharit.org

कौन बनेगा रामभक्त

१. अपर्णा किनका नाम है?
अ) सीता
ब) पार्वती
स) वशिष्ठ की पत्नी
द) जनक की भतीजी

२. विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए राम-लक्ष्मण ने किन-किनका वध किया?
अ) ताड़का-मारीच
ब) मारीच-सुबाहु
स) ताड़का-सुबाहु
द) ताडका-मारीच-सुबाहु

३. रामजी ने अपने विशाल ब्रह्मांडयुक्त स्वरूप के दर्शन किन्हें दिये?
अ) कौशल्या
ब) दसरथ
स) हनुमान
द) सीता

४. विराध किनका नाम है?
अ) एक राक्षस
ब) एक ऋषि
स) रावण का एक सेना नायक
द) हनुमान का एक नाम

५. रामजी जटायु से कितनी बार मिले?
अ) एक
ब) दो
स) तीन
द) शून्य

६. तारा किसका नाम था?
अ) एक ऋषि की पत्नी
ब) वाली की पत्नी
स) हनुमान की माता
द) रावण की एक पत्नी

७. रामचरित मानस में सबसे छोटा कांड कौन सा है?
अ) अरण्यकांड
ब) किष्किन्धाकांड
स) सुंदरकाण्ड
द) लंकाकाण्ड

८. लंकिनी कौन थी?
अ) लंका की राजमाता
ब) लंका की चौकीदार
स) विभीषण की पत्नी
द) अशोक वाटिका की संरक्षक

९. विभीषण किनको अपने साथ लेकर रामजी के पास गए?
अ) पत्नी
ब) पत्नी और बच्चे
स) मंत्रिगण
द) सीताजी

१०. मेघनाद का वध किसने किया?
अ) राम
ब) लक्ष्मण
स) हनुमान
द) अंगद

इन प्रश्नों के उत्तर तुलसीकृत रामचरितमानस के आधार पर दीजिये. प्रश्नों के सही उत्तर गर्भनाल के अगले अंक में प्रकाशित होंगे. प्रश्नों के उत्तर तुरंत जानने के लिए kbr@ramacharit.org पर आग्रह किया जा सकता है.

जुलाई २०१२ अंक में प्रकाशित प्रश्नों के सही उत्तर हैं :
१. स, २. अ, ३. स, ४. ब, ५. अ, ६. द, ७. अ, ८. अ, ९. ब, १०. द.

गीता के ये श्लोक **प्रो. अनिल विद्यालंकार** (sandhaan@airtelmail.in) द्वारा रचित गीता-सार से लिए जा रहे हैं, जिसमें गीता के मुख्य विषयों पर कुल १५० श्लोक संगृहीत हैं.

विषय : प्रभु की भक्ति

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः
मय्यर्पितमनोबुद्धिः यो मद्भक्तः स मे प्रियः

गीता १२-१४

जो सदा संतुष्ट रहता है, योगी है, जिसका अपने ऊपर नियंत्रण है, जो दृढ़निश्चयी है और जिसने अपने मन और बुद्धि मुझे अर्पित किए हुए हैं, ऐसा मेरा भक्त मुझे प्रिय है.

संतोषी व्यक्ति ही परमात्मा के निकट रह सकता है. जो व्यक्ति कुछ याचना लेकर परमात्मा के पास जाएगा वह, लोभ और भय के कारण, हमेशा अपने और ईश्वर के बीच एक तनाव और दूरी अनुभव करेगा. जो मनुष्य दृढ़ निश्चय के साथ अपने मन और बुद्धि को पूरी तरह परमात्मा को समर्पित कर देगा, वही उसके निकट पहुँच सकेगा. परमात्मा के बारे में हमारी सभी धारणाएँ हमारे मन के द्वारा ही बनाई गई हैं जिस पर हमारी प्राणवती इच्छाओं और भय का प्रभाव है. पूर्ण रूप से अपने आप को परमात्मा के प्रति अर्पित करके ही हम उसके सच्चे स्वरूप को जान सकते हैं और उसके निकट पहुँच सकते हैं.

सततं संतुष्टः : निरन्तर संतुष्ट रहनेवाला, **योगी** : योग का अभ्यासी, **यतात्मा** : अपने ऊपर नियंत्रण रखनेवाला, **दृढ़निश्चयः** : दृढ़निश्चयी, **मयि-अर्पित-मनोबुद्धिः** : अपने मन और बुद्धि को मुझे अर्पित करनेवाला, **यो मद् भक्तः** : जो मेरा भक्त है, **स मे प्रियः** : वह मुझे प्रिय है.

यस्मान् नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः
हर्षामर्ष-भयोद्वेगैः मुक्तो यः स च मे प्रियः

गीता १२-१५

न तो जिससे लोग उद्विग्न होते हैं और न जो लोगों से उद्विग्न होता है, जो हर्ष, क्रोध और भय के उद्वेगों से मुक्त है, वह मुझे प्रिय है.

कुछ लोगों से दुनिया के लोग परेशान रहते हैं तो कुछ लोग दुनिया के लोगों से परेशान रहते हैं. जिस व्यक्ति का अपनी भावनाओं पर नियंत्रण है और जो सब दशाओं में समान रह सकता है, सब लोग उसके निकट आना चाहते हैं और वह भी आसानी से सबके निकट रह सकता है. गीता के इस श्लोक के अनुसार जो व्यक्ति संसार के लोगों से प्यार करता है और जिसे संसार के लोग प्यार करते हैं वही ईश्वर को भी प्रिय है. हर्ष, क्रोध, भय आदि संवेगों के अधीन रहने वाले व्यक्ति के व्यवहार में कुछ ऐसा होता है जिससे उसमें और बाकी लोगों में दूरी बनी रहती है. जो व्यक्ति मनुष्यों के निकट रहता है वही ईश्वर के निकट जा सकता है.

यस्मात् : जिस व्यक्ति से, **लोकः न उद्विजते** : संसार उद्विग्न नहीं होता, **और ऽ** : जो व्यक्ति, **लोकात् च न उद्विजते** : संसार से उद्विग्न नहीं होता, ऽ : जो, **हर्ष-अमर्ष-भय-उद्वेगैः मुक्तः** : हर्ष, क्रोध और भय के उद्वेगों से मुक्त, **मे भक्तः** : मेरा भक्त है, **स मे प्रियः** : वह मुझे प्रिय है.

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः

गीता १२-१६

जिसे किसी से कोई अपेक्षा नहीं है, जो पवित्र है, कार्य में कुशल है, उदासीन है, जो कभी व्यथित नहीं होता और सकाम भावना से कर्म प्रारम्भ नहीं करता, ऐसा भक्त मुझे प्रिय है.

पहले कहा गया है कि ईश्वर को ऐसा व्यक्ति प्रिय है जो सभी के प्रति मित्रता और करुणा का भाव रखता है और सब दशाओं में समान रहता है. ऐसा व्यक्ति वही हो सकता है जो कभी किसी से कोई अपेक्षा न रखे और समान भाव से सबकी सहायता करे. साथ ही, अन्य लोगों के प्रति मित्रता और करुणा का भाव रखना ही काफ़ी नहीं है, उनकी सहायता कर सकने के लिए कर्मों में कुशलता भी चाहिए. किन्तु ऐसा संभव है कि परोपकार के मार्ग में भी रुकावटें आएँ और अन्य लोगों से मान के स्थान पर अपमान मिले. ऐसी दशा में व्यथित होने के बजाय मनुष्य को निष्काम भाव से अपना कर्तव्य करते रहना चाहिए.

अनपेक्षः : किसी से कोई अपेक्षा न करनेवाला, **शुचिः दक्षः** : पवित्र और कुशल, **उदासीनः गतव्यथः** : उदासीन और व्यथारहित, **सर्व-आरम्भ परित्यागी** : कर्मों के सकाम प्रारम्भ को छोड़ देनेवाला, **यो मद् भक्तः** : जो मेरा भक्त है, **स मे प्रियः** : वह मुझे प्रिय है.

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः

गीता १२-१७

जो कभी हर्ष, द्वेष या शोक नहीं करता और न कभी कोई आकांक्षा करता है, जो शुभ और अशुभ दोनों का ही परित्याग कर देता है, ऐसा भक्तिमान व्यक्ति मुझे प्रिय है.

ईश्वर को पाने के लिए उसकी बनाई हुई सृष्टि से प्यार करना आवश्यक है. इस संसार की प्रत्येक चीज़, प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक घटना को बिना प्रसन्नता और अप्रसन्नता के स्वीकार करना, किसी से कोई आकांक्षा न करना, सफलता मिलने पर हर्षित न होना और असफलता मिलने पर शोक न करना, और शुभ और अशुभ दोनों के ही भाव को छोड़ देना, यह ईश्वर के निकट पहुँचने के लिए आवश्यक है. हम ईश्वर पर कोई शर्त लगाकर उससे प्यार नहीं कर सकते, और न उसे समझ ही सकते हैं. शुभ और अशुभ का निर्णय ईश्वर पर छोड़कर उसके प्रति पूर्ण समर्पण करके उसकी प्रेरणा के अनुसार चलना ही मनुष्य के लिए श्रेयस्कर है. इसके लिए समत्व- भाव की साधना आवश्यक है.

यो न हृष्यति : जो न हर्षित होता है, **न द्वेष्टि** : न द्वेष करता है, **न शोचति** : न शोक करता है, **न काङ्क्षति** : न आकांक्षा करता है, **शुभ-अशुभपरित्यागी** : शुभ और अशुभ दोनों को छोड़ देनेवाला, **यः भक्तिमान्** : जो मेरे प्रति भक्ति की भावना से युक्त है, **स मे प्रियः** : वह मुझे प्रिय है. ■

जारी...

पंचतंत्र कई दृष्टियों से संसार की सर्वाधिक लोकप्रिय कृतियों में से एक है। इसमें संकलित कहानियों का मूल उत्स लोक-जीवन है। भारतीय कृतियों में पंचतंत्र ऐसी अकेली रचना है, जिसे पूरी तरह ज्ञानकोश कहा जा सकता है। कथा प्रस्तुति की जो शैली इसमें प्रयुक्त है, उसकी एक लंबी परम्परा है। 'वेद', 'ब्राह्मण' आदि ग्रंथों में भी इस फैंटेसी का प्रयोग हुआ है।

इश्क ने घोड़ा बनाकर रख दिया

पुराने जमाने में एक राजा हो चुका है. उसका नाम था नंद. वह बहुत प्रतापी राजा था और उसका नाम देश-विदेश में फैला हुआ था. उसके मुकुट में लगी मणियों की चमक से उसके पांवों का आसन चमकता रहता था और उसके यश की चांदनी से सारी दुनिया में उजियाला छाया रहता था. उसके एक मंत्री का नाम था वररुचि. वह बहुत ज्ञानी था. कोई शास्त्र था ही नहीं जिसे उसने पढ़ न रखा हो और कोई ऐसा विषय नहीं था जिसकी उसे गहरी जानकारी न हो.

एक दिन उसकी पत्नी उससे रूठ गई. वररुचि उसे बहुत प्यार करता था इसलिए उसने उसे तरह-तरह से मनाने की कोशिश की, पर वह रूठी ही रही. अब वररुचि उसकी मिन्नतें करने लगा. उसने कहा, 'प्रिये, तुम यह तो बताओ कि तुम्हें प्रसन्न करने के लिए मैं क्या करूं. तुम्हारा मन रखने के लिए मैं कुछ भी करने को तैयार हूं.'

इस तरह उसके बहुत मनाने के बाद उसकी पत्नी ने कहा, 'यदि ऐसी ही बात है तो आप अपना सिर मुड़ाकर मेरे पैरों पर गिर जाएं, तभी मैं मान सकती हूं कि आप मुझसे सचमुच प्रेम करते हैं.'

वररुचि ने देखा रूठी हुई पत्नी को रिझाने का और कोई उपाय नहीं है तो उसने सिर मुड़ा लिया और उसके चरणों पर झुक गया. अब कहीं जाकर पत्नी का मुंह सीधा हुआ.

"औरतों के कहने में आकर आदमी क्या कुछ नहीं कर बैठता, उनकी बात में आकर उन्हें क्या कुछ नहीं दे डालता. मैंने अपना मुंडन उसी पर्व में कराया है जिस पर्व में आदमी भी घोड़ों की तरह हिनहिनाता है."

संयोग कुछ ऐसा हुआ कि महाराज नंद की पत्नी भी उसी रात उससे रूठ बैठी. वह भी किसी तरह पसीजने का नाम नहीं ले रही थी. जब नंद उसे हर तरह से मना कर हार गया तो उसने कहा, 'प्रिये, मैं तुम्हारे बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता. तुम्हारे पैरों पड़ता हूं, मैं तुम्हें रिझाने के लिए कुछ भी करने को तैयार हूं. तुम अपना यह कोप छोड़ो और मुस्करा कर मेरी ओर देखो.'

रानी ने कहा, 'यदि ऐसी बात है तो तुम्हें घोड़ा बनना होगा. मैं तुम्हारे मुंह में लगाम लगाकर दौड़ाऊंगी और तुम्हें दौड़ते हुए घोड़े की तरह हिनहिनाना होगा.'

राजा को अपनी पत्नी की बात माननी पड़ी तब जाकर कहीं वह पसीजी.

अगले दिन प्रातः राजा नंद सभा में विराजमान हुए तो वररुचि भी आए. उन्हें देखकर राजा नंद ने पूछा, 'वररुचि जी, ऐसा कौन-सा पर्व आ पड़ा था कि आपने अपना सिर मुड़वा लिया?'

मंत्रियों को तो रनिवास की बातों की भी खबर रहती ही है. फिर संभव है कि रानी और मंत्राणी दोनों अपने को अपने-अपने पतियों की चहेती समझती रही हों और उन्हीं में बाजी बद गई हो और अगले दिन उन्होंने एक-दूसरे से हेकड़ी में यह कहानी कह दी हो. जो भी हो, वररुचि को पता था कि राजा नंद के साथ रात क्या बीती है. वररुचि ने वही वाक्य दुहराया, 'औरतों के कहने में आकर आदमी क्या कुछ नहीं कर बैठता, उनकी बात में आकर उन्हें क्या कुछ नहीं दे डालता. मैंने अपना मुंडन उसी पर्व में कराया है जिस पर्व में आदमी भी घोड़ों की तरह हिनहिनाता है.'

'दुष्ट घड़ियाल, तुम भी नंद और वररुचि की तरह जोरू के गुलाम हो. ऐसा न होता तो उसकी बात मानकर भला तुम मेरी जान के पीछे पड़ जाते? यह तो तेरी जबान ने सारा भेद खोल दिया, नहीं तो मेरी तो कब की छुट्टी हो गई थी. ठीक ही कहते हैं कि अपनी जबान के कारण ही तोते और मैना पिंजड़े में बंद किए जाते हैं और जबान न चलाने के कारण ही बगुले बेरोक-टोक घूमते रहते हैं. मौन से सभी काम बन जाते हैं.'

'ऐसा न होता तो भला वह गधा जो बाघ के चमड़े से इस तरह ढंका हुआ था कि दूर से ही देखने पर डर लगता था, अपनी वाणी के कारण मारा जाता.'

घड़ियाल ने पूछा, 'ऐसा कैसे हुआ?'

बानर ने कहा, 'बताता हूं.' ■

महर्षि वेद व्यास

वैदिककालीन ऋषि वेद व्यास की रचना महाभारत की गणना भारतीय साहित्य-भंडार के सर्वश्रेष्ठ महाग्रंथों में की जाती है। इसमें पांडवों की कथा के साथ अनेक सुन्दर उपकथाएँ हैं तथा बीच-बीच में सूक्तियाँ एवं उपदेशों के उज्जवल रत्न भी जुड़े हुए हैं। महाभारत एक विशाल महासागर है जिसमें अनमोल मोती और रत्न भरे पड़े हैं। रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति और धार्मिक विचार के मूल स्रोत माने जा सकते हैं।

महाभारत

सातवां दिन

दुर्योधन का सारा शरीर घावों से भरा था. असह्य पीड़ा हो रही थी. पितामह भीष्म के पास जाकर वह बड़ा झल्लाया और बोला- 'पितामह! प्रतिदिन पांडवों की ही जीत होती जा रही है. वे ही हमारे व्यूह को तोड़ते और हमारे वीरों को मौत के घाट उतारते जा रहे हैं, फिर भी न जाने आप क्यों कुछ करते-धरते नहीं?'

दुर्योधन को सांत्वना देते हुए भीष्म ने उत्तर दिया-

'बेटा दुर्योधन! द्रोणाचार्य, शल्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, विकर्ण, भगदत्त, शकुनि, राजा सुशर्म, मगध नरेश, कृपाचार्य और स्वयं मुझ जैसे महारथी लोग जब तुम्हारी खातिर प्राणों तक की बलि चढ़ाने को तैयार हैं तो फिर चिंता काहे की? धीरज धरो, भगवान सब ठीक ही करेंगे.' यह कहकर भीष्म सेना की व्यूह-रचना में लग गये.

जब व्यूह-रचना हो चुकी तो भीष्म बोले- 'राजन! अपनी इस सेना को तो देखो! हजारों की संख्या में रथ-घोड़े, घुड़सवार, उत्तम हाथी, देश-विदेश से आये हुए शस्त्रधारी सैनिक आदि से सज्जित इस विराट सेना से मनुष्यों की कौन कहे, देवताओं तक को परास्त किया जा सकता है, फिर भय किस बात का?'

यह कहकर भीष्म ने दुर्योधन को एक ऐसा लेप दिया, जिसके लगाने से दुर्योधन के सारे घाव ठीक हो गये और वह फिर से ताजा हो उठा. इससे दुर्योधन का साहस एवं उत्साह बढ़ गया और वह खुशी-खुशी फिर लड़ने को तत्पर हो गया.

उस दिन कौरवों की सेना का व्यूह मंडलाकर रचा गया. एक-एक हाथी के निकट सात-सात रथ खड़े थे. हरेक रथ की रक्षा के लिये सात घुड़सवार सैनिक नियुक्त थे. एक-एक घुड़सवार का सात-सात धनुर्धारी वीर साथ दे रहे थे. एक-एक धनुर्धारी वीर का बचाव करने को दस-दस वीर ढील लिये खड़े थे. सभी वीर अभेद्य कवच पहने हुए थे. इस सुसज्जित विशाल सेना-समूह के बीच में अपने रथ पर खड़ा दुर्योधन ऐसे शोभायमान हुआ, जैसे देवताओं की सेना में देवराज इन्द्र.

उधर युधिष्ठिर ने पांडवों की सेना को 'वज्र-व्यूह' में रचवाया. उस दिन का युद्ध केन्द्रित न था, बल्कि कई मोर्चों पर व्याप्त था. प्रत्येक मोर्चे पर विख्यात वीरों में घमासान युद्ध होता रहा. एक मोर्चे पर अर्जुन के विरुद्ध स्वयं भीष्म डटे हुए थे. एक स्थान पर द्रोणाचार्य और विराटराज में भीषण युद्ध हो रहा था. दूसरे एक मोर्चे पर शिखंडी और अश्वत्थामा में लड़ाई हो रही थी. एक जगह धृष्टद्युम्न और दुर्योधन भिड़े हुए थे. एक ओर नकुल और सहदेव अपने मामा शल्य पर बाण बरसा रहे थे. दूसरी ओर आवंती के दोनों राजा युधामन्यु से लड़ते दिखाई दे रहे थे. एक मोर्चे पर दुर्योधन के चार भाइयों की अकेला भीमसेन खबर ले रहा था, तो दूसरे मोर्चे पर घटोत्कच और भगदत्त में भयानक द्वन्द्व छिड़ा हुआ था. एक और मोर्चे पर अलम्बुष और सात्यकि की टक्कर थी तो कहीं दूर पर भूरिश्रवा धृष्टद्युम्न का मुकाबला कर रहे थे. युधिष्ठिर का श्रुतायु के साथ द्वंद्व हो रहा था, जबकि कृपाचार्य और चेकितान एक-दूसरे मोर्चे पर भिड़ रहे थे.

> *"एक-एक हाथी के निकट सात-सात रथ खड़े थे. हरेक रथ की रक्षा के लिये सात घुड़सवार सैनिक नियुक्त थे. एक-एक घुड़सवार का सात-सात धनुर्धारी वीर साथ दे रहे थे. एक-एक धनुर्धारी वीर का बचाव करने को दस-दस वीर ढील लिये खड़े थे."*

द्रोणाचार्य के साथ हुई लड़ाई में विराट को हार खानी पड़ी. उनका रथ, सारथी और घोड़े सब नष्ट हो गये. इस पर विराटराज अपने पुत्र शंख के रथ पर चढ़ गये. विराट कुमार उत्तर एवं श्वेत, पहले ही दिन की लड़ाई में काम आ चुके थे. सातवें दिन के युद्ध में तीसरे कुमार शंख ने पिता के देखते-देखते प्राण त्याग दिये.

उधर शिखंडी के रथ को अश्वत्थामा ने तोड़-फोड़ डाला. इस पर शिखंडी जमीन पर कूद पड़ा और ढाल-तलवार के टुकड़े कर दिये. पर अपनी टूटी तलवार ही शिखंडी ने बड़े जोर से घुमाकर अश्वत्थामा पर फेंक मारी. अश्वत्थामा ने कुशलता से एक बाण ऐसा निशाना ताककर मारा कि वेग के साथ आ रही तलवार रास्ते में ही कटकर गिर पड़ी. शिखंडी बुरी तरह घायल हुआ और सात्यकि के रथ पर चढ़कर मैदान छोड़कर भाग गया.

> दुर्योधन के तीन भाई अभिमन्यु के साथ लड़कर बुरी तरह हारे. अभिमन्यु चाहता तो उनके प्राण ले लेता, किन्तु उसे भीमसेन की प्रतिज्ञा याद थी. इस कारण उनको जीवित छोड़कर दूसरी ओर को हट गया.

राक्षस अलम्बुष और सात्यकि में जो युद्ध हुआ, उसमें पहले सात्यकि की बड़ी बुरी गति हुई. किन्तु थोड़ी ही देर में वह संभल गया और राक्षस की बुरी तरह खबर ली. अलम्बुष हारकर उलटे पांव भाग खड़ा हुआ था.

दुर्योधन के रथ के घोड़े धृष्टद्युम्न के बाणों के बुरी तरह शिकार हुए. इस पर दुर्योधन हाथ में खड्ग लेकर मैदान में कूद पड़ा और धृष्टद्युम्न की ओर झपटा. किन्तु शकुनि ने बीच में पड़कर दुर्योधन को रथ पर बिठा लिया और युद्धभूमि से हटा लिया.

अवंति के दोनों भाई-विंद और अनुविंद युधामन्यु के विरुद्ध लड़े और हार गये. उनकी सारी सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गई.

वृद्ध भगदत्त हाथी पर सवार होकर घटोत्कच से लड़ा और उसकी सारी सेना को तितर-बितर कर दिया. अकेला घटोत्कच अंत तक डटा रहा. भयानक युद्ध हुआ और अंत में घटोत्कच हारकर मैदान छोड़ भाग खड़ा हुआ. भगदत्त की इस विजय पर कौरव-सेना में बड़ी खुशी मनाई गई.

एक दूसरे मोर्चे पर मद्रराज शल्य अपने भानजों नकुल और सहदेव से लड़ रहा था. नकुल के रथ के घोड़े मारे गये. वह तुरंत सहदेव के रथ पर सवार होकर मामा शल्य पर बाण चलाने लगा. सहदेव के चलाये पैने बाणों से शल्य मूर्च्छित हो गया. शल्य का यह हाल देखकर उसके सारथी ने बड़ी चतुराई से अपने रथ को वहां से हटा लिया जिससे शल्य के प्राणों की रक्षा हो गई. कौरव-सेना ने जब देखा कि स्वयं राजा शल्य मैदान छोड़कर भाग रहे हैं तो उसमें घबराहट फैल गई. माद्री-पुत्रों ने विजय शंख बजाते हुए शल्य की सेना को तहस-नहस कर दिया.

दोपहर को युधिष्ठिर और श्रुतायु में जोर का युद्ध होने लगा. युधिष्ठिर का रथ श्रुतायु के रथ की ओर बढ़ा. जाते-जाते युधिष्ठिर ने श्रुतायु पर कई बाण चलाये. श्रुतायु ने उन सब बाणों को रोका ही नहीं बल्कि सात तीखे बाण युधिष्ठिर पर खींचकर मारे, जिससे युधिष्ठिर का कवच टूट गया और वह घायल हो गये. इस पर युधिष्ठिर को बड़ा क्रोध आ गया और उन्होंने एक बड़ा भयानक बाण श्रुतायु की छाती पर मारा. उस दिन युधिष्ठिर अपने स्वाभाविक शांत-भाव से रहित से हो गये और क्रोध के कारण प्रज्वलित हो उठे. अंत में श्रुतायु अपने रथ, घोड़े और सारथी से हाथ धो बैठा और घायल होकर मैदान छोड़कर भाग खड़ा हुआ. इस पर दुर्योधन की सेना में खलबली मच गयी. सैनिक घबराहट में पड़ गये. इस घटना के बाद तो दुर्योधन की सेना का साहस और भी टूट गया और सैनिकों में भय छा गया.

राजा चेकितान कृपाचार्य के साथ लड़ने लगा. कृपाचार्य ने चेकितान के सारथी को मार डाला और रथ को भी चकनाचूर कर दिया. इस पर चेकितान खड्ग लेकर जमीन पर कूद पड़ा और कृपाचार्य के घोड़ों और सारथी को मार डाला. तब आचार्य कृप भी रथ से उतरे और पृथ्वी पर ही खड़े हो चेकितान पर कई बाण चलाये. उन बाणों के प्रहार से चेकितान बहुत ही परेशान हो गया और तब क्रोध में आकर कृपाचार्य पर अपनी गदा वेग से घुमाकर फेंकी, परन्तु कृपाचार्य ने उसे भी बाणों से काट दिया. इस पर चेकितान तलवार घुमाता हुआ कृपाचार्य पर झपटा. कृपाचार्य ने तुरन्त धनुष फेंक दिया और खड्ग लेकर तैयार हो गये. दोनों में घात-प्रतिघात होता रहा. अंत में दोनों ही घायल होकर गिर पड़े. भीमसेन चेकितान को और शकुनि कृपाचार्य को अपने-अपने रथ पर बिठाकर शिविर में ले गये.

धृष्टकेतु ने छियानवे बाण भूरिश्रवा की छाती पर तान कर मारे. सभी बाण निशाने पर जा लगे. उस समय भूरिश्रवा उन बाणों के साथ ऐसे देदीप्यमान हुए जैसे सूर्य अपनी किरणों से सुशोभित होते हैं. ऐसे में भी भूरिश्रवा धृष्टकेतु के पीछे बुरी तरह पड़ गये और उसे युद्ध-भूमि से खदेड़ कर ही छोड़ा.

दुर्योधन के तीन भाई अभिमन्यु के साथ लड़कर बुरी तरह हारे. अभिमन्यु चाहता तो उनके प्राण ले लेता, किन्तु उसे भीमसेन की प्रतिज्ञा याद थी. इस कारण उनको जीवित छोड़कर दूसरी ओर को हट गया. इतने में पितामह भीष्म अभिमन्यु से भिड़ पड़े. अर्जुन ने जब यह देखा तो श्रीकृष्ण से बोला- 'सखे! मैं भीष्म पर हमला करना चाहता हूं. आप उधर को ही रथ चलाइए.'

अर्जुन के वहां पहुंचते ही उसके और भाई भी वहां पहुंचे. अकेले भीष्म पांचों पांडवों का सामना करने लगे. पर यह युद्ध अधिक देर नहीं चला. सूरज अस्त होने लगा और युद्ध बंद हुआ. दोनों पक्ष के सैनिक और वीर थके-मांदे, घावों की पीड़ा से तड़पते व कराहते हुए अपने शिविरों में जा पहुंचे.

दोनों तरफ के वीरों ने अपने-अपने शरीर पर लगे बाण निकाले और घावों को वैद्यक-रीति के अनुसार पानी से धोकर औषधि लगाई और विश्राम करने लगे. कुछ देर मन-बहलाव के लिये संगीत और वाद्य का आनन्द लेने लगे. दोनों ओर के सैनिक उस आनन्द में लीन हो गये कि युद्ध की चर्चा तक भूल गये.■

प्रेमेन्द्र मित्र

(१९०४-१९८८)

बांग्ला साहित्य के विख्यात कवि, उपन्यासकार एवं कहानीकार. प्रारम्भिक काल में चिकित्सक बनने का असफल प्रयास किया, फिर स्कूल शिक्षक हुए. उन्होंने तिजारत में भी हाथ आजमाया और उसमें भी असफल रहे. तब उन्होंने लिखने में अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा की पहचान की और अन्ततोगत्वा बांग्ला साहित्य के कवि और लेखक के रूप में प्रतिष्ठित हुए. बांग्ला वैज्ञानिक कथाएँ और जासूसी उपन्यास भी लिखे. वे उत्तर कोलकाता के सिटी कॉलेज में बांग्ला के प्राध्यापक थे. उन्होंने कल्लोल, कलि कलम, बांग्लार कथा, बंगबाणी, संवाद तथा अन्य पत्रिकाओं का सम्पादन किया.

अनुवाद

मूल बांग्ला से हिन्दी में अनुवाद गंगानन्द झा

चौंका देनेवाली
याकि
आँखों को ठण्डक देनेवाली
एक भी सुबह या शाम
अगर मिले
तो उसे चित्रित कर
फ्रेम में बँधवाकर रख देना

यदि थोड़ा-सा
सुख या दुलार
उल्लास या उत्तेजना
वेदना या विक्षोभ
पाओ
तो उसमें सुर देना
और कहानियों में
गूँथ कर रखना

समय की धार में
बहते उपलाते
जो कुछ देखा
सुना, सोचा, समझा

सिर्फ जब
यन्त्रणा की
लहर उठेगी
पक्की बुनियाद के भी
अन्तर से

तुम्हारे तुमको भी
चूर-चूर करके
प्राणों की गुड़िया
नाच के धागे को
तोड़कर
दो पल के लिए जब
होओ आजाद
तब कविता लिखने की
कोशिश करना.

■

पल्लवी सक्सेना
भोपाल में जन्म. नूतन कॉलेज, भोपाल से बी.ए. एवं अँग्रेज़ी साहित्य में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की. विगत ५ वर्षों से लंदन में निवास. हिन्दी ब्लॉग जगत की सक्रिय सदस्य एवं मेरे अनुभव (http://mhare-anubhav.blogspot.com) हिन्दी ब्लॉग लिखती हैं.
सम्पर्क : pallavisaxena80@gmail.com

सूर्यास्त और मेरा मन

कभी यूं भी होता है कि
अक्सर किसी नदी किनारे शाम के वक्त
उस नदी के निर्मल जल में पैरों को
डालकर बैठना बहुत अच्छा लगता है
न सिर्फ बैठना बल्कि
घर लौटते हुए परिन्दों के कलरव के साथ
देखना उस सूर्य को अस्त होते हुए
ना जाने क्यूँ उस अस्त हुए सूर्य को देख
अठखेलियाँ करता है मेरा मन
बिलकुल उसी सूर्य की अठखेलियों की भांति
जैसे वह सूर्य बदलता है अपना रंग
उस आकाश गंगा में नहा कर
खुद को शीतल करने के लिए
उस वक्त बिखर जाते हैं
उस विशाल आकाश गंगा में भी
न जाने कितने ही रंग
कभी सिलेटी, तो कभी नीला
तो कभी गुलाबी-सा मोहक रंग
तब उन रंगों को देखकर
मेरे मन के अंदर भी बिखर जाते हैं
भांति-भांति के रंग
कभी एक मुस्कुराहट
तो कभी आँखों में नमी
कभी क्रोध की ज्वाला
तो कभी आत्म संतुष्टि का भाव
ठीक वैसे ही
जैसे आकाश गंगा में
अस्त होता हुआ सूर्य
कई रंग बदलता है
उस वक्त ऐसा प्रतीत होता है मानो
जैसे यह आकाश गंगा का रंग नहीं
यह रंग है हमारी ज़िंदगी का
क्योंकि हमारी ज़िंदगी भी तो
एक नदी के प्रवाह की तरह ही
बहती चलती है
शुरुआत में एक अबोध शिशु जैसी
निर्मल, कोमल, निश्छल
लेकिन समय की एक हलचल
हमारी ज़िंदगी की नदी को
एक नयी दिशा देने में सक्षम सिद्ध होती है
और उस हलचल में
हिचकोले खाता हमारा अस्तित्व
कभी वियोग, कभी मिलाप
या कभी विछोह का संताप
सहते हुए बस डूबता उभरता रहता है
और एक दिन यह ज़िंदगी की नदी भी
जा मिलती है उस सागर में
जहां से फिर कभी कोई
वापस नहीं आता...
▪

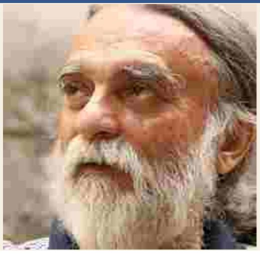

मुश्ताक अली खान 'बाबी'

१९४८ में खम्भात, गुजरात में जन्म. १९७१ में धातुशास्त्र में स्नातक बने. ४० साल 'प्लास्मा' टेक्नोलॉजी में काम किया. कविताएँ अंग्रेजी, उर्दू, हिंदी, गुजराती और फ्रेंच भाषाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं. सम्प्रति - पत्नी एवं बेटी के साथ पूना में रहते हैं.

सम्पर्क : maxbabi@gmail.com

कविता

मौन

कभी शब्दहीनता, कभी सूक्ष्म स्पंदन
कभी गोपनीयता, कभी आतंरिक स्खलन
कभी वैचारिक पंगुता, कभी मानसिक दमन
- शून्यावकाश के बहुतेरे रूप हैं.

विनय

वाणी विकास जब तक वाणी विलास न बने
उचित रहता है -
जो न थमे संगीत योग्य स्थान पर वो भी
अरुचिकर होता है.

योग्य शब्दकोश

नारि-सहज चंचलता पुरुष में
पुरुष-सहज शौर्य नारी में
अविरत शैशव वृद्ध में
अक्षय गाम्भीर्य शिशु में
भाषा को सूक्ष्म गन्धों से
कुछ अनबन है

एक अलग ही संसार

मेरे मस्तिष्क के गूढ़ कोशों में
एक अतिसूक्ष्म संसार पनपता है -
जिसको न आदित्य की प्रचंड ऊष्मा
न मेघराज का अल्प-जीवित तांडव
न दामिनि की चंचल अलाप-झलाप से
कोई व्यवहार है
उसे पर्याप्त परिभाषा से सुलझाना
सामान्य शब्दों की मायाजाल के बस में नहीं.

अस्तित्व

मेरा अस्तित्व मात्र एक रूप है
जबकि शील स्वरूप है -
बिना विवेक सब कुछ कुरूप है -
दुश्मनों से आच्छादित वातावरण में
बस एक सत्य ही धूप है

संतृप्ति

संतृप्ति एक सुविशेष गुणधर्म है
जिसके अबधूत प्रकाश के आगे
सर्व कुबेर के द्वार लज्जा कर सिकुड़ते हैं.

संकलन

दृष्टिहीन चक्षुओं में भी ब्रह्मांड का
विस्तृत संकलन शक्य है -
दयापात्र तो संकुचित मानस है.
■

स्वाति कपूर चड्ढा
सिवनी, मध्यप्रदेश में जन्म. बी.एस-सी., बी.एड., हिन्दी एवं अंग्रेजी साहित्य तथा लोक प्रशासन में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की. काव्य संग्रह 'मेरे एहसास' प्रकाशित. हिन्दी ब्लॉग swati-rishi.blogspot.com का संचालन. सम्प्रति - केंद्र सरकार के प्रौद्योगिकी संस्थान में राजभाषा हिन्दी से सम्बंधित पद पर कार्यरत.
सम्पर्क : swvnit@yahoo.co.in

तुमने नहीं देखा!

ऐ मेरे बच्चे! तुमने नहीं देखा
तारों भरे आसमान को देखते हुए
छत पर सोना
केसरिया सुबह की किरनों से
नींद का खुलना
वो चिड़ियों का मधुर कलरव और
उनका दाना चुगना
फूलों और कलियों को मुस्काते और
ओंस में नहाते देखना

ऐ मेरे बच्चे! तुमने नहीं देखा
उन्मुक्त होकर बाग-बगीचों
खेत-खलिहानों में घंटों खेलना
कभी घर-घर खेलना तो कभी
गुड्डे-गुड़ियों का ब्याह रचाना

पापा की उंगली पकड़ कर
मेले में ख़ुशी-ख़ुशी जाना
और ऊँचे से झूले में बैठ कर
जोर जोर से चिल्लाना

ऐ मेरे बच्चे! तुमने नहीं देखा
वो स्कूल का तनाव रहित माहौल
जहाँ हँसी-खुशी गुजरे
बचपन के पल
प्रेरणादायी शिक्षक और
उनका प्यार भरा दुलार
पढ़ाई संग खेलकूद और
पक्की दोस्ती की भरमार
घर लौटने पर माँ का
दरवाजे पर खड़ा रहना
आते ही बस्ता फेंककर
खेलने को भाग निकलना

ऐ मेरे बच्चे! तुमने नहीं देखा
ज़िन्दगी की झंकार को
गीत में घुलते हुए
मिटटी की खुशबू को
मन तक पहुचते हुए
अपनेपन और विश्वास को
रिश्तों में पनपते हुए
बारिश के पानी में
कागज़ की नावों को बहते हुए
काश! तुम्हे मैं दे पाऊँ
वे खूबसूरत सुहाने क्षण
जिससे खुल के जी सको तुम
अपना मधुर सा बचपन.
■

हरिबाबू बिंदल

आम बातों में व्यंग्य खोज लेने वाले सहज व्यंग्यकार के तौर पर पहचाने जाते हैं. विश्वविवेक व विश्वा जैसी अमरीकी पत्रिकाओं में निरंतर तथा कादम्बिनी व भाषा भारतीय पत्रिकाओं में कविताएँ एवं कहानियों का प्रकाशन. अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति द्वारा पहली अमुक्तक नामक हास्य व्यंग्य किताब प्रकाशित. हिंदी फिल्म आकांक्षा से कहानीकार के तौर पर जुड़े. तीन दशकों से उत्तरी अमेरिका में हिंदी से तथा अनेक राजनैतिक व सामाजिक संस्थाओं से संबद्ध.

संपर्क : बुई, मैरीलेंड, यूएसए. ईमेल : Hbindal@aol.com

कविता

मोक्ष

मुझे नहीं चाहिये मोक्ष
चाहिये जीवन बारम्बार
मुझे नहीं चाहिये स्वर्ग
चाहिये उस आँचल का आड़

क्या है भगवन के पाने में
क्या लम्बे तिलक लगाने में
क्या है उस लम्बी यात्रा में
बद्री नारायन तक जाने में
मुझे नहीं चाहिये मुक्ति
चाहिये जीवन से खिलवाड़

क्या मिलता मन्दिर जाने में
जो मिलता प्रिय के पाने में
क्या सुख है उस समाधि में
जो है प्रिय से बतियाने में
मुझे नहीं चाहिये ब्रह्म
खुले यदि उसका हृदय किवाड़

ना जानू आरती वंदन मैं
क्या है उस झूठे क्रन्दन में
उससे ज्यादा आनन्द मुझे
आता प्रिय के अभिनन्दन में
मुझे नहीं चाहिये शान्ति
मिले उसकी प्यारी फटकार

हा हा खाँये ओ स्वाँग करें
झोली फैलायें, माँग करें
एक डॉलर डाल आरती में
बदले में अपना पेट भरें
मुझे नहीं चाहिये भीख
मिले सद्‌बुद्धि शुद्ध विचार

पंडित हमको हैं बतलाते
भक्ति से भगवन मिल जाते
यह त्रेता द्वापर युग नहीं
भगवन सुनकर दौड़े आते
मुझे नहीं चाहिये ढोंग
चाहिये यह सच्चा संसार.

■

डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता

गणित एवं औद्योगिक इंजीनियरिंग में डिग्रियां. तीस वर्षों से मैनेजमेंट के प्रोफेसर. फिलहाल युनिवर्सिटी ऑफ ह्यूस्टन-डाउनटाउन में सेवारत. पचास से अधिक शोध-पत्र विश्व के नामी जर्नल्स में प्रकाशित. दो मैंनेजमेंट जर्नल के मुख्य संपादक एवं कई अन्य जर्नल्स के संपादक. हिंदी पढ़ने-लिखने में रुचि. काव्य-लेखन, विशेषकर सामयिक एवं धार्मिक काव्य लेखन में.

सम्पर्क : om@ramacharit.org

क्यों जन्मे थे कृष्ण

हर साल की तरह, फिर जन्माष्टमी आएगी
परमपिता परमात्मा की, फिर से याद दिलाएगी
इस जन्माष्टमी पर, मन में प्रश्न उभरता है
परमपिता परमात्मा, मानव क्यों बनता है

सुना है विद्वानों से, बैकुण्ठ में प्रभु वास है
जहाँ न कोई दु:ख-संताप, केवल सुख का वास है
उस वैकुण्ठ को छोड़, क्यों आते प्रभु इस लोक
है जहाँ मात्र संताप, पीड़ा, यातना और शोक

आप कहेंगे, यह कैसा बचकाना प्रश्न है
स्वयं श्रीभगवान कृष्ण ने गीता में कहा है
यदा यदा हि धर्मस्यग्लानिः भवतिभारत
अभ्युत्थानम् अधर्मस्य तदाआत्मानम्सृजामि अहम्?

अर्थात, कृष्ण थे जन्मे पापियों का नाश करने
धर्म की करने रक्षा और अधर्म का नाश करने
बात मैं मानूँ नहीं, भगवन क्षमा मुझको करें
सही बात है कुछ और लीला न प्रभु मुझसे करें

कंस शिशुपाल जैसे जंतुओं को मारने के लिए
वैकुण्ठ से हल्का इशारा, पर्याप्त निपटाने के लिए
हाँ, जन्म लेकर आपने, इनका नाश कुछ ऐसे किया
'बाय-प्रोडक्ट' जन्म का, मन भ्रमित सब का किया?

जन्मे थे प्रभु आप, हम मानवों को शिक्षा देने
हम थे भूले-भटके, थे जन्मे आप हमें राह देने
कैसे करें आदर बड़ों का, माता, पिता, गुरुजनों का
कर्तव्य-पालन के लिए, त्याग कैसे करें सुखों का

कैसे करें प्रेम निर्मल, मन में न कोई स्वार्थ हो
मनसा वाचा कर्मणा, हर सोच केवल धर्मार्थ हो
कैसे निभाएँ मित्रता, सीखें सुदामा प्रेम में
छोड़ी प्रतिज्ञा स्वयं की, अर्जुन सखा के प्रेम में

कैसे करें रक्षा बहिन की, जैसे की द्रौपदी हे प्रभो
दुष्ट-दण्डित कैसे करें, शिक्षा आपने दी है प्रभो
त्यागी दुर्योधन की मेवा, स्वीकारा साग विदुर का
छोड़ें हम साथ पापियों का, गुप्त सन्देश आपका

दी और भी शिक्षा प्रभु, नहीं शब्द मेरे पास हैं
हाथ मेरा थामिए प्रभु, केवल मेरी यह आस है
इस जन्माष्टमी पर प्रभु, बोध मुझको दीजिये
अनुकरण कुछ कर सकूँ, बुद्धि मुझको दीजिये

जन्मे थे प्रभु आप क्यों, ज्ञान सबको दीजिये
कैसे जीवन जियें हम, पथ प्रदर्शित कीजिये
'ओम' चरणों में पड़ा, कृपा-शरण दीजे विभु
कृष्ण-कृपा सर्वत्र हो, जय जयकार मेरे प्रभु.

■

श्याम कृष्ण भट्ट
१९३४ में वाराणसी में जन्म. बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से मैकेनिकल इंजीनियरिंग की उपाधि. हिन्दी साहित्य में विशेष रुचि. अनेक रचनाएँ प्रकाशित. उत्तरप्रदेश परिवहन निगम से १९९२ में मुख्य प्रधान प्रबंधक के पद से सेवा निवृत्त. सम्प्रति - भोपाल में प्रवास.
सम्पर्क : shyambhatt@hotmail.com

कविता

साथ

शंकाओं से घिरा हुआ मन
चाह रहा है यह कहना
इतना साथ दिया है तुमने
थोड़ा और साथ देना

स्मृतियों के साये कुछ पल
साथी बन बहला देंगे
जग माया के सम्मोहन
भ्रम के पथ तक पहुँचा देंगे
अँधकार को भेद रश्मियाँ
ध्वस्त करेंगी जब सपना
जन समूह के इस सागर में
किसको समझूंगा अपना
अन्तर की पीड़ा समझो तो
छोड़ मुझे मत खो जाना
इतना साथ दिया है तुमने
थोड़ा और साथ देना

जिस पथ का राही हूँ अब मैं
साथ तुम्हें देना होगा
थक कर हार नहीं जाऊँ मैं
चलना साथ तुम्हें होगा
घुटन भरा एकाकी जीवन
सहना बहुत कठिन होगा
साथ रहोगे तुम हर दम
संकल्प तुम्हें करना होगा
सूनेपन के गलियारों में
मुझे भटकने मत देना
इतना साथ दिया है तुमने
थोड़ा और साथ देना

अब तो चाह रहा अंतर्मन
हम-तुम मिलकर साथ रहें
इक-दूजे की बैशाखी बन
साथ जियें और साथ मरें
जीवन पथ पर चलते-चलते
शिथिल अगर मैं हो जाऊँ
देकर मुझे सहारा अपना
मंजिल तक पहुँचा देना
आँधी से बुझती इस लौ को
ओट हाथ की दे देना
इतना साथ दिया है तुमने
थोड़ा और साथ देना.

■

कुसुम सिन्हा

साहित्य में अभिरुचि पिता से विरासत में मिली. बचपन से ही कहानी-कविताएं पढ़ने में रुचि रही. पटना यूनिवर्सिटी से एमए, बीएड. लगभग पच्चीस बरसों तक विभिन्न विद्यालयों में हिंदी पढ़ाती रहीं। १९९७ में अमेरिका आई और हिंदी पढ़ाने के लिए बाल विहार नाम के स्कूल से जुड़ीं. बचे समय में साहित्य-सृजन में मगन रहती हैं. हिंदुस्तान की नामी पत्रिकाओं के अलावा अमेरिका से निकलने वाली विश्वा, साहित्य कुंज, सरस्वती सुमन आदि में रचनाएँ प्रकाशित. 'भाव नदी से कुछ बूंदे' काव्य संग्रह प्रकाशित.

संपर्क : kusumsinha2000@yahoo.com

एक

जब उसकी याद आई होगी
तब कली कोई चटकी होगी

उसके कोमल तन को छूकर
रिम झिम बरसात हुई होगी

हवा भी बहक गई होगी
खुशबू सी फ़ैल गई होगी

मिलने को दिल बेचैन बहुत
कोई रह न मिल पाई होगी

वो नजर जो दिल में उतर गई
वो फंस सी अब चुभती होगी

कोई याद मिलन की रातों की
होठों पर मुस्कान बनी होगी

▪

दो

भवरों सा फूल फूल पे नगुनगुनाइए
ठुकरा दिया मुझे तो न यु मुस्कुराइए

मन की तेरे इश्क के काबिल नहीं हूँ मै
ऐसे तो न वफ़ा की कसमें झूठ खाइए

मर मर के जी रहे हैं तेरी दीद के लिए
नजरें मिलों तो नहीं नजरें चुराइए

मौसम बहार का मुझे लगता उदास हसी
ऐसे तो न फिजा औ गुलशन को रुलाइये

न दिन को चैन है नहीं आराम रात को
मेरे हसीं ख्वाब न ऐसे जलाइए

है कह रहा जमाना मुझे भूल गए हो
याद आ के बार बार न मुझको रुलाइये

▪

नीरज गोस्वामी

अगस्त १९५० को जम्मू में जन्म. अंतरजाल की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में ग़ज़लें प्रकाशित. पेशे से इंजीनियर. अनेक विदेश यात्राएं कर चुके हैं. सम्प्रति - भूषण स्टील मुंबई में वाइस प्रेसिडेंट के पद पर कार्यरत.

सम्पर्क : neeraj1950@gmail.com

शायरी की बात

अगर तू प्यार से कह दे तो दुनिया छोड़ देते हैं

दहलीज़ पे रख दी हैं
किसी शख्स ने आँखें
रोशन कभी इतना तो दिया
हो नहीं सकता

भटकना मेरी आदत नहीं है, ये जानते हुए भी कि इंसान को अभी तक जो भी खजाने मिले हैं वो उसके भटकने के कारण ही मिले हैं. दुनिया की सारी विलक्षण खोजें इंसान के भटकने का ही परिणाम हैं. इंसान भटकता नहीं तो क्या उसे हीरे-सोना-चांदी या अन्य धातुओं की खाने मिलतीं? समंदर में मोती मिलते? सच्चाई की खोज होती? नहीं. एक जगह बैठे रहने से कभी कुछ हासिल नहीं होता. जरूरी नहीं की आप हमेशा किसी उद्देश्य को लेकर ही भटकें. निरुद्देश भटकने पर भी खजाने हाथ आ जाते हैं.

आज हम जिस किताब की बात कर रहे हैं वो है हर दिल अजीज़ शायर जनाब मुनव्वर राना साहेब का ग़ज़ल संग्रह 'नए मौसम के फूल'. पेपर बैक संस्करण में ये किताब मात्र एक सौ पच्चीस रुपये की है. किताब ग़ज़लों का अनमोल खजाना है. अब मुनव्वर राना साहब जैसे शायर की कलम जो शेर निकलेंगे वो हीरे मोतियों से कम थोड़े न होंगे. मैं मानता हूँ की उर्दू या हिंदी ग़ज़ल का प्रेमी उनके बारे में ज़रूर जानता होगा इसलिए उनकी बात न कर मैं सिर्फ उनकी इस किताब का जिक्र ही करूँगा.

मुनव्वर साहब ने 'माँ' पर शेर लिख कर ग़ज़लों की दुनिया को एक नयी रौशनी दी है. जैसे शेर उन्होंने माँ पर कहें हैं वैसे शायरी की इतिहास में कहीं नहीं मिलते.

इस किताब में भी उनके माँ पर कहे दर्ज़नों लाजवाब शेर हैं. मुनव्वर साहब जिस कारीगरी, नफासत और बेबाकी से सियासत पर शेर कहते हैं वो कमाल शायरी में बहुत कम देखने को मिलता है. उनके शेर सियासत के कारनामों से दिल में उपजे दर्द को क्या खूब बयां करते हैं :

सियासत बांधती है पाँव में जब मज़हबी घुंघरू/
मेरे जैसे तो फिर घर से निकलना छोड़ देते हैं
अगर मंदिर तुम्हारा है अगर मस्जिद हमारी है
तो फिर हम आज से ये अपना दावा छोड़ देते हैं
ये नफरत में बुझे तीरों से हमको डर नहीं लगता
अगर तू प्यार से कह दे तो दुनिया छोड़ देते हैं.

शायरी को असरदार बनाने में भाषा का बहुत अहम् रोल होता है. जब शायर रोजमर्रा की छोटी-छोटी बातों को एक अलग ही अंदाज़ में पेश करता है तो सुन-पढ़ कर मुंह से बरबस वाह निकल पड़ती है.

'दिव्यांश पब्लिकेशन्स' एम.आई.जी. २२२ फेस-१ एल.डी.ऐ, टिकैत राय कालोनी, लखनऊ-२२६०१७ द्वारा प्रकाशित इस किताब में मुनव्वर

> मुनव्वर साहब जिस कारीगरी, नफासत और बेबाकी से शेर कहते हैं वो कमाल शायरी में बहुत कम देखने को मिलता है. उनके शेर सियासत के कारनामों से दिल में उपजे दर्द को क्या खूब बयां करते हैं.

साहब की चुनिन्दा एक सौ अठारह ग़ज़लें हैं और सारी की सारी एक से बढ़कर एक. मुनव्वर जी की अभी-अभी हमने 'ग़ज़ल गाँव', 'पीपल छाँव', 'सब उसके लिए', 'बदन सराय', 'माँ', 'नीम के फूल', 'जिल्ले ईलाही से', 'बगैर नक्शे का मकान', और 'घर अकेला हो गया' जैसी शायरी की विलक्षण किताबों को पढ़ा ही था की अचानक ये किताब भी पीछे-पीछे छप के हमारे सामने आ गयी. कहाँ तो उन्हें ढूंढ ढूंढ कर रिसालों या नेट पर पढना पड़ता था और कहाँ उनके लिखे का खजाना घर बैठे मिल गया. हम पाठकों की तो समझिये किस्मत ही खुल गयी.

कम से कम बच्चों के होंठों की हंसी की खातिर
ऐसी मिट्टी में मिलाना कि खिलौना हो जाऊँ.

इस किताब के साथ आपको एक वी.डी.ओ सी.डी. मुफ्त दी गयी है. इस वी.सी.डी. में मुनव्वर राना साहब को देखिये अपने दिलकश अंदाज़ में खूबसूरत शेर सुनाते हुए और बरसों बरस इस मंज़र को याद रखिये. ऐसा अनमोल तोहफा आजतक किसी शायरी की किताब के साथ मुझे नहीं मिला है.■

स्नेह ठाकुर

१५ जुलाई को चित्रकूट में जन्म. शिक्षण : भारत, इंग्लैंड और कैनेडा. लेखन, पठन, नाट्य-मंचन, चित्रपट, चित्रकला एवं भ्रमण. नाट्य लेखन-मंचन, चलचित्र अभिनय से जुड़ाव. प्रमुख प्रकाशित कृतियाँ : काव्य संग्रह - जीवन के रंग, जीवन निधि, अनुभूतियाँ, काव्याञ्जलि, जज़्बातों का सिलसिला, दर्दे-जुबाँ (उर्दू कविताओं का संग्रह). कहानी संग्रह - अनोखा साथी, आज का पुरुष. उपन्यास - कैकेयी : चेतना-शिखा. मान्यता प्राप्त दुभाषिया, अधिकृत अनुवादक और भाषांतरकार. 'एडिटर्स च्वाइस एवार्ड' से 'दि नेशनल लाइब्रेरी ऑफ़ पोएट्री' द्वारा चार बार सम्मानित. 'साहित्य भारती सम्मान', दिल्ली से सम्मानित. सम्प्रति - संपादक-प्रकाशक वसुधा. वेबसाइट - http://www.Vasudha1.webs.com

सम्पर्क : 16 Revlis Crescent Toronto, Ontario M1V-1E9 Canada E-mail: sneh.thakore@rogers.com

प्रथम डेट

ड्रेसिंग टेबल के आगे खड़े हम दोनों अपनी-अपनी प्रथम डेट के लिए श्रृंगार कर रहे थे. अदिति अपने मंगेतर ऋतेश के लिए आकांक्षाओं से भरा दिल लिये, कंपकपाते हाथों से अपेक्षाओं को सहेजती हुई और मैं पीयूष के लिये आशंकाओं भरा दिल लिये, थरथराते हाथों से अनिश्चितता का दामन पकड़े. हम दोनों के होंठ यदा-कदा कुछ बुदबुदा देते हैं. एक-दूसरे के आमने-सामने खड़े हो बात करने का साहस दोनों ही नहीं जुटा पा रहे हैं. दर्पण की छवि ही, बिना एक-दूसरे का सामना किये कभी-कभार कुछ बोल देती है.

चेहरे पर पाउडर लगाते अदिति ने ही पूछा, 'कौनसी साड़ी पहन रही हो माँ?'

पेंटिंग : मिली भाटिया

'शायद नीली, हल्की-सी जरी वाली.' - 'नहीं-नहीं'... वातावरण में गूँजे शब्द ख़ुद ही को अजीब लगे और बोल पड़ी, 'प्रिंटेड प्योर सिल्क वाली, क्यों ठीक होगी न? और हाँ मेक-अप कैसा है?' और पूछते ही इस विचार ने कौंधकर अधरों पर थोड़ी-सी मुस्कुराहट छिटका दी कि टीनेज़र लड़की से बेहतर सलाह डेट्स के श्रृंगार पर और कौन दे सकता है.

मेरी मुस्कुराहट ने अदिति को भी अछूता न छोड़ा, बोली - 'नहीं नीली ज़री वाली माँ; कुछ तो ग्लैमरस होना चाहिए न!' और उसने मेरे गालों को हल्के-से मलकर 'रूज़' को न के बराबर कर दिया और 'आई-शैडो' को क़रीब-क़रीब मिटा ही दिया.

मैंने दर्पण में देखा तो भौहें अपने-आप ही सिकुड़ गयीं, 'अरे! यह तो 'मेक-अप' करने से पहले जैसी थी वैसी ही हो गयी हूँ!'

'हाँ माँ, यह तुम्हारा असली रूप ही है. आप ही ने तो हमें हरदम यह सिखाया है कि अंदर का रूप काउंट करता है, बाहर का नहीं. इट्स एन इंपोर्टेंट डेट, यू डोंट वांट टु गिव हिम रांग इम्प्रैशन.'

'अरे! तुम कब से मेरी बात सुनने लगी हो?'

'रिलैक्स मॉम, यू विल बी फ़ाइन', अदिति ने कहते हुये शरारत में कंधे उचका दिये, 'इट्स जस्ट ए डेट...'

> *"बयालीस साल की हो गयी हूँ, पति बाईस साल का साथ मेरे से आधी उम्र की लड़की के लिए छोड़ गए हैं. ठीक ही तो है, उसकी तो उम्र ही नहीं वज़न भी शायद मेरे से आधा होगा"*

> जिसे मैं निधि की निधि समझे बैठी थी वही मेरी सौतन बन बैठी और उस निधि पर डाका डालने, उसे हड़पने कई जूलियाँ आईं और गईं.

'अभी तो तुम कह रही थी कि 'इट्स वेरी इंपोर्टेंट डेट, आई शुड बी केयरफुल नॉट टु गिव हिम रांग इम्प्रैशन.'

अदिति भी हँस पड़ी और मेरी हू-बहू नकल करते बोली, 'आप कब से मेरी बात सुनने लगी हैं!'

तनाव थोड़ा-सा कम हो रहा है पर हाथों के कम्पन ने फिर भी बिंदी गिरा ही दी.

अदिति बोली, 'माँ, थोड़ी देर बैठ जाओ, न हो तो थोड़ा-सा योगा कर लो.'

'क्या? मैं और योगा? अरे! कब देखा है तुमने मुझे योगा करते हुये?'

'हाँ माँ', अदिति ने गम्भीरता से कहा, 'इट माइट रिलैक्स यू. जूली रोज़ करती है. कहती है कि टेन्शन भी नहीं रहता और इससे रंग-रूप भी निखरता है.'

थोड़ा-सा तनाव दूर होने से हल्की-सी जो शांति उपजी थी वो जूली के नाम से ही कपूर की तरह उड़ गयी. शरीर की हर-एक मांस-पेशियाँ सूखी लकड़ी की तरह अकड़ गयीं. मुँह का स्वाद न चाहते हुये भी कड़वा गया. अपने को शांत रखने की बड़ी कोशिशों के बावजूद आवाज़ में 'सरकाज़्म' उभर पड़ा - 'हाँ, जूली को ही योगा की ज़्यादा ज़रूरत है. तुम्हारे पिता के साथ रहने के लिए जूली को ही योगा से उत्पन्न शांति की ज़्यादा ज़रूरत है. मैं तो अपने हिस्टीरिया के साथ ही सबसे ज़्यादा 'कंफरटेबल' हूँ, मुझे तो यही आता है.'

'आय एम सॉरी ममी', अदिति ने जल्दी से मेरा हाथ पकड़ते हुये कहा, पता नहीं क्यों मैंने उसका नाम ले लिया, इट्स स्टूपिड ऑफ मी, प्लीज़, आय एम सॉरी.'

अपनी बड़ी कोशिशों के बावजूद कि चेहरे पर 'इंडिफरेन्स', अवज्ञा का मास्क चढ़ा लूँ, चेहरा अपना 'डिस्कम्फ़र्ट' न छुपा पा रहा था; होंठ वक्र होकर थरथरा रहे थे, गले की नसें बैठने का नाम नहीं ले रही थीं, अवांछित आँसुओं को रोकने की कोशिश में पलकें फड़फड़ाए जा रही थीं, सब कुछ धुँधला पड़ रहा था.

दूर से आती अदिति की आवाज़ ने, 'रियली मम्मी, आई डोंट नो व्हाई आय ब्रॉट हर अप!' - 'शायद मैं भी ऋतेश के साथ अपनी प्रथम डेट की वज़ह से नर्वस हूँ' - मुझे सचेत किया. अपने पर ही कोफ़्त हुई कि क्यों ऐसा होता है? 'फॉर गॉड सेक, अब तो साल हो गया है.'

किसी तरह अपने को सँभालती हुई बर्फ़ीली मुस्कान के साथ बोली, 'इट्स ऑल राइट बेटा, शी इज़ योर फ़ादर्स वाईफ' और ज़ोर से अपने होंठों को दबा अगला वाक्य निकलने से रोक पाई, 'ईवन शी इज़ यंग इनफ़ टु बी योर सिस्टर.'

बेटी की आँखों में झलकी ममता और दया का मिश्रण न झेल सकी. शीशे की ओर मुँह फेर आँखों के नीचे की लाइन मिटाने लगी. मिटाते-मिटाते थक गयी पर वो न मिटी और तब आभास हुआ कि यह मिटाने वाली लाइन नहीं, यह तो विषाद के उन थपेड़ों की निशानी है जो अब उम्र भर अंकित रहेगी.

'मम्मी-मम्मी, आप ठीक तो हैं न?' अदिति कि आवाज़ कानों से टकराई और न चाहते हुये भी बोल पड़ी, 'हाँ, ठीक ही तो हूँ, बयालीस साल की हो गयी हूँ, पति बाईस साल का साथ मेरे से आधी उम्र की लड़की के लिए छोड़ गए हैं. ठीक ही तो है, उसकी तो उम्र ही नहीं वज़न भी शायद मेरे से आधा होगा! तीन सिजेरियन बच्चों के बाद माँस-पेशियाँ कसाव में आने का नाम नहीं लेना चाहतीं, जवानी दामन छिटक दूर खड़ी हो गयी है. शादी से पहले कभी डेट नहीं की और शादी के बाद तो डेट का प्रश्न ही नहीं उठता; तुम्हारे पिता ही सब कुछ थे. आज ज़िंदगी में पहली बार डेट पर जा रही हूँ. वो आदमी जो कुछ ही मिनटों में मेरा द्वार खटखटाएगा, समझ नहीं आता उससे क्या कहूँगी? कैसे 'बिहेव' करूँगी?'

'मम्मी, याद करो, आपने हमें क्या शिक्षा दी है', अदिति माँ को उसके इस मूड से निकालने का प्रयत्न करती हुई बोली.

थोड़ी-सी निधि की मुस्कुराहट वापस आई - 'यही कि ज़्यादा चपड़-चपड़ न करना...'

'मम्मी!'

'पगली, मैं तो मज़ाक कर रही थी.'

'मम्मी प्लीज़, आज कोई मज़ाक नहीं, ठीक है न? आज आप सिर्फ़ आप ही रहें', और उसने वो ढेर सारे उपदेश जो कभी मैंने उसे दिये थे और उसके पहले मेरी माँ ने मुझे दिये थे, दे डाले; और फिर नटखटी मुस्कुराहट से बोली, 'यदि आप ज़्यादा नर्वस हों तो बोलिएगा मत, चुपचाप सुनती रहिएगा. पुरुषों को अच्छा लगता है जब कोई उन्हें सुनता रहे, अपने को महत्वपूर्ण समझने लगते हैं. कहते हुये अदिति अपने बाल बनाने लगी.

उसकी पीठ होते ही मैं फिर आशंकाओं के अंधेरे कुएँ में गिरती चली गयी. अपनी आवाज़ उसी अंधेरे कुएँ से आती लगी कि, 'यह कैसी विवशता है! अनिल ने तो मुझे अपने जीवन से झाड़-बुहार कर कचड़े की तरह बाहर फेंक दिया

और मैं सारी कटुताओं के साथ उसे अपने में समाये बैठी हूँ. यद्यपि क्रोधित हूँ पर क्रोध से कहीं ज़्यादा विरह भावना से पीड़ित हूँ. विरह और क्रोध में गहरा अन्तर है - एक कविता है दूसरा जंगल की आग. संबंध टूट जाते हैं पर संदर्भ बने रहते हैं और आदमी तड़पता रहता है. किसी भी तरह आँचल झटककर दूर नहीं हो पा रही हूँ.

अदिति मेरी ओर मुड़ी और एक बार जो मेरे बोलने का प्रवाह चालू हो गया था वो अबाध गति से बहने लगा - 'हाँ अदिति, हालाँकि शादी के दूसरे साल से ही अनिल विश्वासघात करने लगे थे और मैं अपने को ही दोषी माने, उनके अनुरूप ढलने का निरंतर प्रयास करती रही.'

'लोग कहते हैं, आदमी का प्यार उसकी जिव्हा में समा जाता है, अतः मैंने उनकी पसंद की खाने की चीजों में निपुणता हासिल की.'

'हर तरह से, हर कोण से अपने को बदला, पर कहीं कोई अन्तर न पड़ा.'

'मेरी तो अनिल ने चारदीवारी पर लगी बेल की तरह उसमें से जब जी चाहा फूल नोंच, बाकी समय अवहेलना ही की है. मेरे संदर्भ में रिश्ते के हाथों माँग में चुटकी-भर सिन्दूर भर, सिंदूरी अस्तित्व से काँटेदार फेंसिंग लगा दी - यह लड़की वर्जित क्षेत्र है, इस सरहद के बाहर निकल इसे जीने का कोई हक़ नहीं है! पर मैं स्वयं इसकी इस सीमा-रेखा से बाध्य नहीं हूँ, जब चाहूँ, जहाँ चाहूँ, निरंकुश जा सकता हूँ.'

'उनका अलमस्त, फक्कड़ स्वभाव, उनकी फ़्लर्टनेस जो शादी के प्रथम वर्ष गुदगुदा जाती थी और जिसे मैं निधि की निधि समझे बैठी थी वही मेरी सौतन बन बैठी और उस निधि पर डाका डालने, उसे हड़पने कई जूलियाँ आईं और गईं.'

'आदमी स्वभावगत् ही रहता है. बदल के भी आदमी बदलता नहीं है चाहे वह कितना ही पढ़ा-लिखा, सभ्यता के शिखर पर पहुँचा हुआ हो. काफी समय बाद यह अक्ल आई. कई सालों तक कुछ तथ्य हठी बालक की तरह भेजे में घुसने से साफ़ इंकार करते रहे, अंत में यह तथ्य स्वीकारना ही पड़ा कि शायद प्रकृति की तरह आदमी की ज़िन्दगी भी अपने साँचे को बदल नहीं पाती है. अभी भी 'शायद की सम्भावना' मुँह बाये बीच में खड़ी ही थी. कोशिशें, नये प्रयोग, प्रयास, सब कुछ जब एक 'एक्सपेरिमेंटल' चल-चित्र की तरह पर्दे पर उभर कर वहीं ख़त्म हो गए तब जाना शोषण और शोषित का सिलसिला अनंत था, उसके नये सिरे खड़े हो जाते थे, नित नये संबंध, ताल्लुक उभर आते थे.'

> उम्र बढ़ी है, देह की गठन में शिथिलता उभरने लगी है किन्तु मन जहाँ पतंग की तरह कटकर वृक्ष पर अटक गया था, आज भी वहीं अटका है.

'हर अफ़ेयर धीरे-धीरे दिल को नम व जड़ करता गया, और फिर तीन बच्चों के साथ जाती भी तो कहाँ जाती? सच पूछो तो जाना भी नहीं चाहती थी कहीं. अनिल के साथ कुछ इस तरह जुड़ी थी कि सब यातनाओं के बावजूद, उसे जीवन का नासूर समझ काट न सकी.'

'अनिल ने मुझे उस पुरानी कश्ती की तरह बेदिली से समुद्र किनारे फेंक दिया जो उनके अनुसार खुले समुद्र में तैरने के क़ाबिल न थी अतः उसे समुद्र के किनारे रेत पर उतारकर बेदली से फेंकना मानों उनका जन्मसिद्ध अधिकार था. ये कश्तियाँ जीर्ण-शीर्ण हो रेत के घारौंदे की तरह हो जाती हैं जो हवा के एक ही झोंके से टूट-फूटकर बिखर जाती हैं.'

अदिति ने सांत्वना भरे अपने हाथों से मेरे हाथों को सहलाया, लगा बच्ची इस माहौल में रह अपनी उम्र से बड़ी हो गयी है, अनायास मुँह से निकल पड़ा, 'बेटा, ऐसा नहीं कि मैं तुम बच्चों के चेहरे पर आये भावों को पढ़ नहीं पाती. मैं जानती हूँ कि तुम्हें अपने पिता पर रोष है. रोष क्या मुझे कम नहीं? पर स्नेह-तन्तु तोड़ने में अपने को असमर्थ पाती हूँ, इसीलिये तुम लोगों के चेहरे पर झलकी मेरी कमज़ोरी के प्रति अधैर्यता चुपचाप सहन कर जाती हूँ. ये कैसा रिश्ता है! और फिर यह रिश्ता है ही कहाँ? किस रिश्ते से जुड़ी बैठी हूँ! रिश्ते का अर्थ है - नैकट्य - नहीं तो...'

'मित्रों और शुभ-चिंतकों ने कई बार समझाया कि मैं अपनी ज़िन्दगी की बागडोर सँभालूँ, पर संभालती तो कैसे? आत्म-प्रताड़ना से फुर्सत मिले तब न!'

'और फिर जब उम्र की धूप का साया ज़िन्दगी की मुंडेर से ढल गया तो मेरे अंदर बहुत-सी इंतज़ार-भरी शामें यूँ ठहर गयीं जैसे डाँट-फटकार और दहशत से बच्चे की आँख में आँसू ठहर जाता है. संधियों से भरी दुनिया छोड़ने का साहस न कर सकी.'

'उम्र बढ़ी है, देह की गठन में शिथिलता उभरने लगी है किन्तु मन जहाँ पतंग की तरह कटकर वृक्ष पर अटक गया था, आज भी वहीं अटका है. इसीलिये नये सपने आते नहीं हैं और पुराने भयावने सपने बार-बार दस्तक देते हैं, यहाँ तक कि अतीत की उन थोड़ी-सी बची-खुची कोमल भावनाओं को भी चील-कौओं की तरह नोंच-नोंचकर खा जाते हैं. कैसी त्रिशंकु की स्थिति में लटकी हूँ!'

'यह नहीं कि उम्मीदें जब-तब दिल में करवटें नहीं लेती रहीं. दिल! ये दिल भी क्या चीज़ है! आदमी की मुट्ठी-भर के आकार का लोथड़ा ही न जो रगों में बहते खून को रात-दिन पंप करता रहता है? यही है न वह दिल जिसमें उम्मीदें किसी-न-किसी शक्ल-सूरत में, किसी-न-किसी नाड़ी में

करवटें बदलती कही जाती हैं? पर आत्म-ग्लानि, रोष, कड़वाहट से भरे मेरे दिल में किसी और भावना के लिए कोई जगह ही नहीं बची थी. ज़िन्दगी का हर पहलू इनसे भरा हुआ था कि एक सुबह आँख खुली और पाया कि इस दरमियान धीरे-धीरे मैंने सब मित्रों को दूर खिसका दिया और तुम लोगों के चेहरे पर भी लुकी-छिपी मेरे प्रति अधैर्यता दिन-ब-दिन ज़्यादा उजागर होने लगी और तब लगा मेरा यह रोष, मेरी यह प्रताड़ना सिर्फ़ मुझे ही खा कर संतुष्ट नहीं, मेरे परिवार की ओर भी मुँह बाये खड़ी है. उस दिन मैं यह जान गयी कि अब मुझे इस दलदल से निकलना ही पड़ेगा, और उसी दिन से शुरू हो गया था आत्म-सम्मान को पाने का अनंत सफ़र.

जिस दिन पहली बार नौकरी पर गयी थी, आत्म-विश्वास फिर डगमगा गया था, पर तुम लोगों के मेरे प्रति उल्लसित चेहरे देख डगमगाते कदमों को सहारा मिला था.'

'अदिति, यहीं पर ऑफिस में पीयूष से मुलाक़ात हुई. तुम्हारे पिता से बिल्कुल अलग व्यक्तित्व - शांत, गम्भीर, अल्प-भाषी, पर अपनी लगन के पक्के. दो बार मना करने पर भी आज शाम की डिनर-डेट के लिए पूँछ बैठे.'

'अब तुम्हीं बताओ उम्र के इस दौर में कैसे परियों के देश में पहुँच जाऊँ? कहाँ से वह उत्साह लाऊँ जो कब का मुझे छोड़ चुका है? न... अब मुझमें और निराशाओं को झेलने की शक्ति नहीं रही. मैं न जा पाऊँगी. यह प्रथम डेट शुरू होने से पहले ही समाप्त हो जाए तो बेहतर है.'

मैं अपना मुँह छिपाते हुये मुड़ने ही वाली थी कि अदिति की दर्पण से झांकती दो बेबस आँखें मेरे पैरों में बेड़ी डाल गयीं और मैं वैसे ही, वहीं जकड़ी खड़ी रह गयी.

अदिति की आँखें मुझे बरबस खींचे जा रही थीं. भावनाओं के ज्वार-भाटे पर किसी तरह अंकुश लगा कर आवाज़ को सामान्य बनाते हुये, नये संकल्प के साथ बोली, 'नीली हल्की ज़री वाली साड़ी ही ठीक रहेगी, कुछ तो ग्लैमरस भी होना ही चाहिए न!'

क्षणांश में अदिति मेरी बाँहों में झूल रही थी. आँखें तरल हो उठीं, ममत्व उतर आया उनमें. खोये हुये दिन तो नहीं लौट सकते पर ज़िन्दगी की ख़ुशी में शायद कुछ क्षण ब्याज़ रूप में मिलने की उम्मीद हो गयी हो. दुनिया ही उम्मीद पर टिकी है. आदमी उम्मीद पर ही जीता है. आशा की बैसाखी लिए ही दुर्गम से दुर्गम पथ पार कर जाता है.

मैंने प्यार से अदिति के माथे को चूमा और उसके बालों को सहलाते हुये अचानक मेरी नज़र दर्पण पर पड़ी जहाँ दर्पण से झाँकती अपनी आँखों को देख मैं चौंक पड़ी, उनमें प्रथम डेट का भय नहीं था, वरन् थी आशा की किरण. बाहर लाल गुलाबों की दहकन साँझ के धुँधलके में काँटों को अपनी हरीतिमा में छुपा, सिर्फ और केवल सिर्फ अपनी तपिश, अपनी मादक सुगन्ध वातावरण में लहरा रही थी. फूलों की लाली से निकला एक गहरा नशा हवा में फैल मदहोश किए जा रहा था.■

60 MILLION
CHILDREN IN INDIA
have no means to go to school

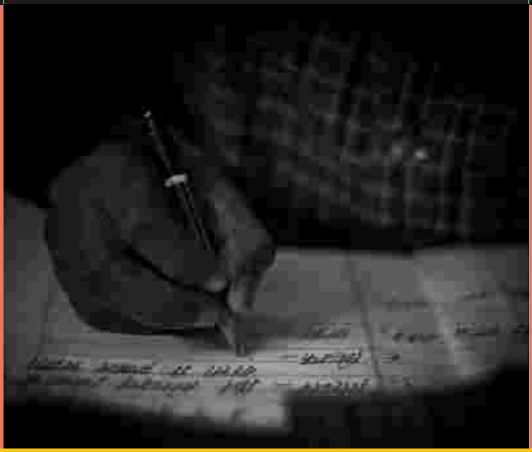

Contribute just Rs. 2750*
and send one child to school
for a whole year

Central & General Query
info@smilefoundationindia.org
http://www.smilefoundationindia.org/contactus.htm

गर्भनाल द्वारा जनहित में जारी

संगीता स्वरूप

प्रख्यात कवियत्री और समीक्षक. काव्य संग्रह 'उजला आसमां' प्रकाशित. श्रेष्ठ टिप्पणीकार के तौर पर 'लोकसंघर्ष परिकल्पना सम्मान', साहित्य शारदा मंच का 'साहित्य श्री' सम्मान प्राप्त. हिंदी ब्लॉग जगत में सक्रिय. http://geet7553.blogspot.com http://gatika-sangeeta.blogspot.com

सम्पर्क : sangeetaswarup@gmail.com

बीज से वृक्ष तक का सफर

खिल उठे पलाश काव्य संग्रह है कवयित्री सारिका मुकेश का जो वी.आई.टी. यूनिवर्सिटी वैल्लोर, तमिलनाडु में अँग्रेजी की असिस्टेंट प्रोफेसर के रूप में कार्यरत हैं. पूर्व में इनके दो काव्य संग्रह 'पानी पर लकीरें' और 'एक किरण उजाला' प्रकाशित हो चुके हैं. ताजा काव्य-संग्रह की भूमिका में कवयित्री ने जो विचार व्यक्त किये हैं, वे गौर करने लायक हैं : *वैश्वीकरण ने भारत को दो हिस्सों में बाँट दिया है – एक जो पूरी तरह से वैश्वीकरण का आर्थिक लाभ (ईमानदारी से, भ्रष्टाचार से या फिर दोनों से) उठा कर अमीर बन चुका है, जिसे हम शाइनिंग इंडिया के नाम से जानते हैं और दूसरा जहां वैश्वीकरण की आर्थिक वर्षा की एक-दो छींट ही पहुँच सकी हैं और जो भारत ही बन कर रह गया है...*

> *मन के दरवाजे पर संवेदनाओं की आहटें ही कविता को विस्तार देती हैं जिनमें जीवन की धड़कनें समाहित होती हैं.*

मन के दरवाजे पर संवेदनाओं की आहटें ही कविता को विस्तार देती हैं जिनमें जीवन की धड़कनें समाहित होती हैं. सच ही इस पुस्तक की संवेदनाओं ने मन के दरवाजे पर ज़बरदस्त दस्तक दी है. यूं तो हर रचना अपने आप में मुकम्मल है लेकिन जिन रचनाओं ने मन पर विशेष प्रभाव छोड़ा है वो हैं –

मिलन — जहां वृक्ष लता को एक दृढ़ सहारा देने को दृढ़ निश्चयी है जैसे कह रहा हो मैं हूँ न.

फिर जन्मी लता / पली और बढ़ी / और फिर एक दिन / लिपट गयी वृक्ष से / और वृक्ष भी / कुछ झुक गया / करने को आलिंगन / लता का /

सामाजिक सरोकारों को उकेरती कुछ कवितायें एक प्रश्न छोड़ जाती हैं जो मन को मथते रहते हैं —

तुमने देखा है कभी / कोई आठ साल का लड़का / सीने में गिनती करती पसलियाँ.

आज वक्त बदल रहा है. लड़कियां भी कदम दर कदम आगे बढ़ रही हैं -

प्रतियोगिता के स्वर्णिम सपनों को आँखों में लिए / कठोर परिश्रम कर डिग्री पा कर / अपने मुकाम को पाने हेतु.

मनुष्य को जो आपस में बांटना चाहिए उससे विमुख हो कर धरती, आकाश यहाँ तक कि हवा पानी भी बांटने को तत्पर है.

वर्जीनिया वुल्फ़ — यह ऐसी रचना है जिसमे लेखिका के पूरे जीवन को ही उकेर कर रख दिया है ।

शब्दों का फेर / नयी सदी का युवा.

यह वो रचनाएँ हैं जो हँसी का पूट लिए हुये गहरा कटाक्ष करती प्रतीत होती हैं.

एक हादसा / सफलता के पीछे वाला व्यक्ति / आधुनिकता का असर / दिल्ली में सफर करते हुये.

यह ऐसी कवितायें हैं जो सोचने पर मजबूर कर देती हैं. आज इंसान की फितरत बदल रही है.

तुम पर ही नहीं पड़े निशान — यह नन्ही नज़्म बस महसूस करने की है कुछ लिखना बेमानी है इस पर.

और अंतिम पृष्ठ तो गजब ही लिखा है एक सार्थक संदेश देते हुये. मृत्यु जन्म से पहले नहीं घटती. बहुत सुंदर.

इस तरह इस पुस्तक के माध्यम से मैंने बीज से वृक्ष तक का सफर किया. हर कविता को महसूस किया और क्यों कि कविता निर्बाध गति से एक आँगन से दूसरे आँगन तक बहती है तो मैं भी इसमें बही. पाठक भी निः संदेह इस पुस्तक से स्वयं को जुड़ा हुआ महसूस करेंगे. पुस्तक की साज-सज्जा और आवरण बेहतरीन हैं.

खिल उठे पलाश
ISBN - ९७८-८१-८८४६४-४९-४
मूल्य - १५०/- रुपए
प्रकाशक - जाह्नवी प्रकाशन, ए-७१, विवेक विहार, फेज-२, दिल्ली ११००९५

हाइकु और कविता संग्रह का विमोचन

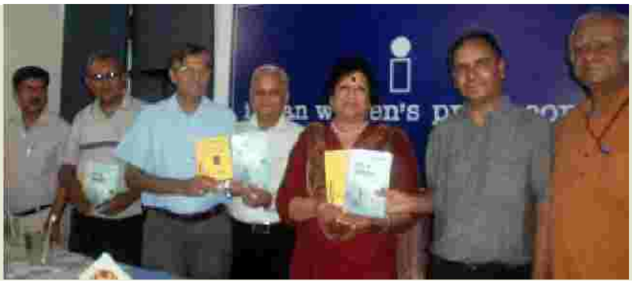

१४ जुलाई २०१२ को इंडिया वूमेन प्रेस क्लब, दिल्ली द्वारा आयोजित समारोह में डॉ. अनिता कपूर की दो पुस्तकों, 'साँसों के हस्ताक्षर' कविता-संग्रह तथा 'दर्पण के सवाल' हाइकु-संग्रह का विमोचन प्रसिद्ध लेखक श्री बलदेव वंशी जी द्वारा किया गया. यह दोनों पुस्तकें अयन प्रकाशन द्वारा प्रकाशित की गई हैं. समारोह में लेखिका को शुभकामनाएँ देने वालों में श्रीमती वीरबाला काम्बोज, सुदर्शन रत्नाकर, सुभाष नीरव, सुरेश यादव, डॉ. सतीशराज पुष्करणा, डॉ. जेन्नी शबनम, सीमा मल्होत्रा, सुशीला शिवराण, भूपाल सूद, रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', अनिल जोशी एवं सरोज शर्मा शामिल थे.

> "डॉ. अनिता कपूर ने सरल सहज भाषा के माध्यम से संश्लिष्ट मानव अनुभूति को व्यक्त करते हुए नए शब्द रेखांकित किए हैं."

डॉ. अनिता कपूर के पूर्व में ४ कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं एवं यह उनका पाँचवाँ कविता-संग्रह है. 'साँसों के हस्ताक्षर' कवयित्री के दूसरे चरण का मूल्यवान् आत्म-सर्जन है, ये शब्द थे वहाँ उपस्थित डॉ. बलदेव वंशी जी के. डॉ. वंशी ने आगे कहा कि डॉ. अनिता कपूर ने सरल सहज भाषा के माध्यम से संश्लिष्ट मानव अनुभूति को व्यक्त करते हुए नए शब्द भी रेखांकित किए हैं.

डॉ. अनिता कपूर ने अपनी कुछ कविताओं का पाठ भी किया. उल्लेखनीय है कि डॉ. अनिता कपूर के लिखे हाइकु अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं, लेकिन संग्रह के रूप में 'दर्पण के सवाल' उनका प्रथम हाइकु-संग्रह है. इसके बाद डॉ. बलदेव वंशी जी ने अपनी कविताओं का भावपूर्ण वाचन करके सबका मन मोह लिया. डॉ वंशी, डॉ. सतीशराज पुष्करणा और रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' ने हाइकु के बारे में अपने विचार प्रस्तुत किए. बहुत ही आत्मीयतापूर्ण वातावरण में यह कार्यक्रम सम्पन्न हुआ.

प्रस्तुति : रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

संतोष श्रीवास्तव सम्मानित

जानी मानी लेखिका संतोष श्रीवास्तव को बहुआयामी साहित्यिक संस्था रायपुर ने ताशकंद में २६ जून को साहित्य एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान हेतु अंतर्राष्ट्रीय 'सृजनगाथा सम्मान' से सम्मानित किया. तीन दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन में कहानी सत्र का संचालन संतोष श्रीवास्तव ने किया तथा कविता सत्र में वे विशेष अतिथि के रूप में मौजूद थीं. इस अवसर पर भारत के विभिन्न प्रान्तों से आये १२७ साहित्यकारों की उपस्थिति तथा समरकंद सहित अन्य दर्शनीय स्थलों की सैर एवं भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री की प्रतिमा पर फूलमाला अर्पित कर उन्हें श्रद्धांजलि दी गई.

प्रस्तुति : सुमीता प्रवीण

हमेशा की तरह गर्भनाल के ताजे अंक की पीडीएफ ईमेल पर मिल गई. पंचतंत्र, महाभारत, गीता सार, रामायण प्रश्नोत्तरी और अब 'व्याख्या' कॉलम में रामचरित मानस के सुन्दरकाण्ड की व्याख्या के जरिये गर्भनाल का एक नया ही स्वरूप बनता जा रहा है. इसमें मुझे पुराने समय की कल्याण पत्रिका के रूप दिखते हैं, दूसरी ओर सम-सामयिक मुद्दों, खासकर हिन्दी भाषा से जुड़ी बातें उजागर करके पत्रिका इस दिशा में सार्थक पहल करती दिखाई दे रही है. सुन्दरकाण्ड के बारे में विगत अनेक अंकों से मनोज श्रीवास्तव जी ने विस्तार से लिखा है. उसे मैं नियमित पढ़ रहा हूं और चकित हूं कि सुन्दरकाण्ड के बारे में इतनी विविधता से भी व्याख्या की जा सकती है. बहुत पहले मैंने मानस पियूष में सुन्दरकाण्ड के बारे में पढ़ा था, लेकिन श्रीवास्तव जी की व्याख्या सचमुच अनूठी है एवं जिज्ञासा को बढ़ाती ही जा रही है.

मानस शर्मा, न्यूयार्क

गर्भनाल के जुलाई-२०१२ अंक में बीनू भटनागर जी का हिन्दी की स्थिति के बारे में लेख अच्छा है. डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री जी का विचार हमेशा की तरह बहुत ही प्रभावशाली है. राजकिशोर जी का चरित्र निर्माण पर उठाया मुद्दा विशेष पसंद आया. प्रख्यात साहित्यकार सूरज प्रकाश जी से मधु अरोड़ा जी की बातचीत बहुत मार्गदर्शक लगी. कवितायें, ग़ज़ल सभी एक से बढ़कर एक हैं.

आशा मोर, त्रिनिदाद

सुन्दरकाण्ड सम्बन्धी लेखों में तत्व की एक बात के साथ अनावश्यक अप्रासंगिक चार बातें होती हैं. विदेशी विचारकों के विभिन्न उद्धरण विषय को उद्‌भाषित कम करते, उसे बोझिल अधिक बनाते हैं. दूसरे लेख में सम्प्रति अंग्रेजी समाचार-पत्र-पत्रिकाओं से उठाए गए शब्दों की भरमार है, जो इसलिए विशेष तौर से खलते हैं क्योंकि लेखक का हिन्दी-संस्कृत का ज्ञान यथेष्ठ है अनुवादित शब्दों को दे सकने के लिए.

अजय कुलश्रेष्ठ, कैलीफ़ोर्निया

'गर्भनाल' का जुलाई-२०१२ अंक प्राप्त हुआ. सभी रचनायें सुन्दर कलेवर में सजी हुई जान पड़ती हैं. साहित्य के क्षेत्र में ये एक अनूठी पत्रिका है.

शील निगम, यू.के.

बहुधा अंग्रेज़ यह पूछते पाये जायेंगे "Are you Hindi?" "Do you speak Hindu?" किसी अंग्रेज़ या अमरीकी से यदि आपकी कभी भेंट हो तो उनका भ्रम दूर करने की अवश्य चेष्टा करें. कृपया उन्हें बताएँ : हम लोगों की भाषा का नाम है 'हिंदी'. हम लोग 'हिंदी' नहीं हैं. भारत में लगभग ३६६ मिलियन यानी कि लगभग ४१ प्रतिशत लोग हिंदी हिंदी बोलते हैं. पर इसका निष्कर्ष यह न निकालें कि हम लोग सभी 'हिंदी' हैं. भारत में अधिकांश लोग ८२८ मिलियन यानी कि लगभग ८०.५ प्रतिशत लोग हिन्दू हैं, लेकिन इसका यह मतलब कि हम 'हिन्दू' बोलते हैं. हम लोगों की भाषा 'इंडियन' नहीं है क्योंकि 'इंडियन' नाम की कोई भाषा नहीं होती. हमें पता है इटली के लोग 'इटैलियन', इंग्लैण्ड के लोग 'इंग्लिश' और जापान के लोग 'जापानीज़' बोलते हैं, पर इंडिया के लोग 'इंडियन' नहीं बोलते हैं. भारतवर्ष में लगभग ४०० भाषायें, अनेकानेक बोलियाँ और १८ मुख्य भाषायें हैं. हम लोग 'हिंदू' नहीं बोलते हैं, उसी प्रकार से जिस प्रकार अंग्रेज 'Christian' नहीं बोलता है. क्योंकि 'Hindu' कोई भाषा नहीं, 'Christian' कोई भाषा नहीं. हमारा धर्म या religion, 'Hinduism' हो सकता है, पर जरूरी नहीं कि हमारी भाषा हिंदी ही हो. हम अनेक भारतीय भाषाओं में से कोई भी भाषा बोल सकते हैं.

जनार्दन अग्रवाल, यू.के.

गर्भनाल पत्रिका आपकी ओर से मुझे लम्बे समय से नियमित रूप से मिलती रही है और मैं वैचारिक एवं आत्मीय आनंद लूटता रहा हूँ. धन्यवाद. गर्भनाल के 'परामर्श मंडल' में डॉ. वेद मित्र का नाम मुझे अचानक ध्यानाकर्षित करता दिखाई पड़ा. अनेक सालों पहले जब मैं जर्मनी गया था तो वहां की एम्बेसी से एक सज्जन यही नामधारक, मिले थे. हो सकता है कि वो आजकल विलायत में ही कार्यरत हों. आप मुझे इनका पता बतायेंगे तो खुशी होगी, इनसे पत्र-व्यवहार का इच्छुक हूँ.

मुश्ताक अली खान 'बाबी', पूना

जुलाई अंक की गर्भनाल पत्रिका का आवरण पृष्ठ सम्मोहक है. अपनी बात पढ़कर रोंगटे खड़े हो गए. वीनू भटनागर जी के आलेख में हिन्दी की चिंता जायज है. जिस तरह बोलचाल में भाषा विभक्त होती जा रही है, हल उचित ही है कि बच्चों को वर्णमाला का ज्ञान सबसे पहले दिया जाना आवश्यक है. इसे संयोग ही कहा जायेगा कि आज ही 'सेवा सदन' पूरा किया है. स्त्री के जीवन का परिचय यह उपन्यास कई चरित्रों के साथ करवाता है. कोई भी बिना प्रभावित हुए नहीं रह सकता, लेकिन वेंकट सुब्बाराव और अंडाल अम्मा ने इस उपन्यास को पूर्णता प्रदान कर प्रेमचंद जी की शब्द शक्ति को अनूठी भेंट दी है. शशी पाधा जी का संस्मरण प्रकृति के पास ले आता है और एक संदेश 'प्यार दो प्यार लो' प्रदान करता है. डॉ. सुरेश राय जी की लघुकथा बहुत मार्मिक और अंदर तक झिंझोड़ने वाली लगी. एक वाक्य- 'माँ बर्तनों को भी संगीत के सुरों मे बाँधकर धोती थी' हमेशा याद रहेगा.

अर्चना, इंदौर

गर्भनाल के जुलाई-२०१२ अंक में डॉ. गौतम सचदेव की कहानी 'टोमाटो कैचप' पढ़ी. इसे पढ़कर लगा कि दुनियाभर में स्त्रियों की दशा लगता है बद से बदतर होती जा रही है. कहानी नहीं हकीकत-सा महसूस होता है कि जैसे सच्ची घटना का वर्णन किया गया हो और कोर्ट के पास इतने केस आते हैं कि वो मानवता को भूल ही जाती है. न्याय मिलना देश और विदेश पर निर्भर नहीं, ये निर्भर हो गया है कि व्यक्ति कितनी संवेदना के साथ केस को समझता है व जुड़ता

है. इस बात को इसलिए बेहतर समझ पा रही हूं क्योंकि जनवरी २०१२ से निरन्तर उपभोक्ता संरक्षण अदालत जयपुर द्वितीय में अपने केस के लिए जा रही हूं. छह महीनों में छह तारीखों पर जज साहब सिर्फ एक बार न्याय की सीट पर बैठे हैं और दोनों वकील नदारत ही रहते हैं. मुझे लगता है कि कानूनों में समय के साथ आवश्यक रूप से बदलाव किये जाने चाहिये ताकि सभी को समय पर न्याय उपलब्ध हो ईमानदारी से.

बबीता वाधवानी, जयपुर

आपकी मैगजिन में अच्छे आर्टिकल हैं. पढ़ने में काफी अच्छी है. मुझे एक चीज जो खटकती है वह है हर पेज में एक ही तरह का कलर यूज किया गया है. मेरी यह सोच है कि हर पेज पर अलग-अलग कलर होने चाहिए जिससे मैगजीन रोचक लगती है. वैसे आपकी मैगजीन में कोई कमी नहीं है परफैक्ट है.

अपनी दिल्ली न्यूज पेपर, नयी दिल्ली

गर्भनाल पत्रिका का ताजा जुलाई-२०१२ अंक देखा. इस अंक का सबसे ज्यादा उल्लेखनीय कॉलम 'व्याख्या' है, जिसमें विद्वान लेखक ने सुन्दरकाण्ड के संदर्भ में न केवल एक नये प्रश्न को सामने रखा है, बल्कि उसका उत्तर भी प्रस्तुत किया है. तुलसी ने सुन्दरकाण्ड के जरिये आतंक का प्रत्युत्तर दिया है, इस धारणा को पुष्ट करने के लिए जितने विश्लेषण संभव हो सकते थे, वह विस्तार से किये गये हैं. लेखक बधाई के पात्र हैं. उम्मीद है सुन्दरकाण्ड की यह श्रृंखला यों ही जारी रहेगी एवं पाठक इससे लाभान्वित होते रहेंगी. सनातन भारतीय संस्कृति की झलकियों को उजागर करने एवं वर्तमान पीढ़ी को उससे रूबरू करवाने के गर्भनाल के मिशन की सराहना करनी होगी. मेरी शुभकामनाएँ.

पण्डित रामस्वरूप शर्मा

गर्भनाल का ताजा अंक प्राप्त हुआ. पत्रिका का कलेवर देखकर ही मुझे आभास हो चला था कि मैं सचमुच ही उच्चस्तरीय साहित्य से रूबरू होने जा रहा हूं और मेरा अनुमान सच भी निकला. गीता सार से मैं बहुत ही प्रभावित हुआ. गीता के श्लोकों की इतनी सटीक टिप्पणी सचमुच प्रशंसनीय है. कहानी शिव गौतम की 'अन्तराल' सचमुच ही मन को छू गई. इस कहानी से मुझे अनायास ही एक पुराना शेर याद आ गया - एक मां जो चार बेटों को पालते नहीं थकी, वह अकेली मां चार बेटों से न पल सकी. कविताओं में डॉ. सुरेश राय की कविता 'दर्पण' बहुत ही भायी और साथ ही लेखों में सर्वाधिक सारगर्भित व ज्ञानवर्धक लेख कौशिक कुमार शांडिल्य का ग्लोबल वार्मिंग पर लगा. लघुकथाओं में खरच व शांतिधाम बहुत अधिक प्रभावित करती हैं, लेखकों को मेरी ओर से बधाई. इसके साथ ही कुछ अशुद्धियों की ओर भी मैं आपका ध्यान खींचना चाहूंगा. लेखक से क्षमायाचना के साथ मैं कहना चाहता हूं कि नवीन सी चतुर्वेदी जी की दूसरी गजल को तकनीकी दृष्टि से गजल नहीं कहा जा सकता. कुछेक अशुद्धियां भी मैंने पायी हैं जैसे कि 'आजकल' में दूसरे छन्द में 'रुकाता' व तीसरे छन्द में 'मनाई'. खैर आपके इतने सार्थक प्रयत्न में इसे नगण्य ही माना जा सकता है. नीरज गोस्वामी के लेख का एक शेर पढ़ते हुए आपसे पत्रिका निरंतर भेजने का अनुरोध करूंगा कि 'दीवारों का ये जंगल जिसमें सन्नाटा पसरा है, जिस दिन तुम आ जाते हो, सचमुच घर जैसा लगता है', सो मेरे घर को भी घर बनाइये.

श्रीकृष्ण सैनी, अम्बाला, हरियाणा

जुलाई २०१२ के अंक में डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री ने साहित्य की शब्द शक्ति का अनोखा और प्रेरणाप्रद उदाहरण दिया है कि मुंशी प्रेमचंद के सेवासदन उपन्यास के तमिल अनुवाद से प्रेरित होकर मद्रास के सुब्बा राव दंपत्ति ने १९२८ में अपना महलनुमा आवास, जमीन रत्नाभूषण सभी कुछ निराश्रित स्त्रियों की सेवा में होम कर दिया था, यह भी कि प्रेमचंद के इस उपन्यास पर बनी कि सेवासदनम् तमिल फ़िल्म भी १९३८ बहुत लोकप्रिय हुई थी. साहित्य के इस प्रेरणादायी प्राणवान तत्व को हिन्दी पाठकों के समक्ष रखने के लिए डॉ. रवीन्द्र जी की जितनी प्रशंसा की जाए कम ही है.

जून २०१२ के अंक के गंगानाथ जी झा का विवेकानंद स्मरण पढ़कर लगा कि अब हम विवेकानंद के मानवीय दृष्टि से मूल्यांकन के दौर से गुजर रहे हैं. उच्चतम मानवीय सामजिक जीवन मूल्य स्थापित कराने वाले राम को हमने पहिले मर्यादा पुरुषोत्तम फिर मानवेतर देव ईश्वर बना दिया. पर भवभूति ने उत्तर राम चरित में जिस मानवीय राम का चित्रण किया है वे राम मन को करुणारस से भाव विभोर कर देते हैं और इस तरह हमारे मन के बहुत ही करीब आ जाते हैं. उसी प्रकार विवेकानंद साहित्य में यत्र-तत्र बिखरे पड़े सन्दर्भों को संकलित संपादितकर जन साधारण के समक्ष प्रस्तुत करने से हमें स्वामी विवेकानंद की प्रकृति के मानवीय पक्ष का भी बोध होता है, इसके बिना हमें वे केवल अतिमानव, चमत्कार सा करने वाले दैवी व्यक्ति ही लगेंगे. अल्मोडा से नैनीताल लेक्चर्स में अन्यत्र विवेकानंद ने दहेज के कारण अपनी बहिन के दुखांत का उल्लेख भी बड़ी वेदना के साथ किया है. श्रद्धेय गंगानद झा ने विवेकानंद पर अपने शोधपरक आलेख में विवेकानंद के इस भावनात्मक पक्ष को बहुत कुशलता से सामने रखा है. आपने इसी क्रम में विवेकानद पर नरेन्द्र कोहली जी की पुस्तक का सारांश जैसा देकर विवेकानद इस इस मानवीय पहलू को और पुष्ट किया है. बेहतर होगा कि कोहली के इस ग्रन्थ के कुछ संपादित अंश आप गर्भनाल के कुछ अंकों में लगातार देते तो आज की युवा पीढ़ी और विदेश में बसे भारतीयों को विवेकानंद के निजीजीवन की व उनके संघर्ष की और जानकारी मिलती.

पृथ्वी सूक्त संस्कृत फॉण्ट छोटे कर सम्पूर्ण एक बार में ही छाप सकते तो बेहतर होता. हिरण्यगर्भ सूक्त भी इसी प्रकार एक बार में देना बेहतर होगा. 'वेद कविता' की सामग्री के लिए मान्यवर प्रभुदयाल मिश्र का मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ.

ब्रजेन्द्र श्रीवास्तव, ग्वालियर
brijshrivastava@rediffmail.com